

संत कबीर की विवेकधारा से अनुप्राणित

# पारख प्रकाश

वर्ष 50

जनवरी-फरवरी-मार्च  
2021

अंक 3



# ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, एकता तथा मानव-धर्म-प्रेरक हिन्दी पत्रिका

प्रवर्तक

सद्गुरु श्री रामसूरत साहेब  
श्री कबीर मन्दिर, बड़हरा  
पोस्ट—मदोबाजार  
जिला—गोंडा, उ०प्र०

आदि संपादक

सद्गुरु श्री अभिलाष साहेब

संपादक

धर्मेन्द्र दास

आदि व्यवस्थापक

प्रेम प्रकाश

मुद्रक एवं प्रकाशक

गुरुभूषण दास

पारख प्रकाश इंटरनेट पर  
www.kabirparakh.com

वार्षिक शुल्क : 50.00

एक प्रति : 13.00

आजीवन सदस्यता शुल्क  
1250.00

## विषय-सूची

### कविता

संतो सो उतरे भव पारा  
जैसे काठ में अगिन है  
गुरुचरण बलिहारी  
गुरु समान तिहुँ लोक में  
हरि सा हीरा छाड़ि कै  
चेतावनी को अंग

### स्तंभ

पारख प्रकाश / 2  
बीजक चिंतन / 29

### लेख

साधना-पथ में सावधानी  
धर्म क्या है?  
पारिवारिक समृद्धि के सूत्र  
मानव तू सबसे महान  
अहंकार न करें  
साधक और उसकी रहनी  
आये हैं सो जायेगे

### कहानी

मौत की देवी कोरोना

### लेखक

सद्गुरु कबीर 1  
संत श्री पलटू साहेब 15  
हेमन्त हरिलाल साहू 28  
संत श्री चरनदास साहेब 30  
संत श्री रविदास साहेब 30  
सद्गुरु कबीर 48

पृष्ठ

व्यवहार वीथी / 16

परमार्थ पथ / 23

भूपेन्द्र दास 7  
श्रद्धेय संत श्री ज्ञान साहेब जी 11  
श्री कृष्णचन्द्र टावाणी 19  
सौम्येन्द्र दास 25  
श्री भावसिंह हिरवानी 27  
धर्मेन्द्र दास 34  
39

दिनेन्द्र दास 31

## नम्र निवेदन

सन् 1971 में जब पारख प्रकाश का प्रकाशन शुरू हुआ था तब इसे स्थायी बनाने के लिए इसकी आजीवन सदस्यता प्रारंभ की गयी थी और उस समय इसका आजीवन सदस्यता शुल्क 100 रु. रखा गया था जो इस समय क्रमशः बढ़ते हुए 1250 रु. है।

प्रायः आजीवन सदस्यता 20 या 25 वर्ष की मानी जाती है, परंतु सद्गुरु कबीर के विचारों के प्रचार-प्रसार की दृष्टि से हम अपने उन सभी ग्राहकों को पारख प्रकाश भेजते रहे हैं जो 30-40 वर्ष पूर्व आजीवन सदस्य बने थे। परंतु कागज की कीमत तथा प्रकाशन व्यय में लगातार वृद्धि होने के कारण अब उन ग्राहकों को पत्रिका भेजना कठिन हो रहा है जो 30-40 वर्ष पूर्व आजीवन सदस्य बने थे। अतः आजीवन ग्राहक नं. 1 से लेकर 1300 तक की पत्रिका मार्च 2021 के बाद बंद कर दी जायेगी।

ग्राहक नं. 1 से 1300 तक के जो आजीवन सदस्य हैं, यदि आप आगे भी पारख प्रकाश पढ़ना चाहते हैं और सद्गुरु कबीर साहेब के मानवतावादी विचारों के प्रचार-प्रसार में सहयोगी बने रहना चाहते हैं तो वर्तमान वार्षिक सदस्यता शुल्क 50 रु. या आजीवन सदस्यता शुल्क 1250 रु. मार्च 2021 तक अवश्य भिजवा दें। आप अपना सदस्यता शुल्क मनीआर्डर से या बैंक के माध्यम से भिजवा सकते हैं। बैंक का विवरण इस प्रकार है—

1. कबीर पारख संस्थान वास्ते पारख प्रकाश

यूको बैंक, खाता नं. 19780100000003, IFSC Code : UCBA-0001978

2. कबीर पारख संस्थान-पारख प्रकाश विभाग

यूनियन बैंक ऑफ इण्डिया, खाता सं. 538702010001907, IFSC Code : UBIN 0553875



## कबीर दर्शन

लेखक—सद्गुरु श्री अभिलाष साहेब जी

(ग्यारहवां संस्करण)

सद्गुरु कबीर के जीवन, दर्शन, कर्तृत्व एवं व्यक्तित्व को समझने के लिए एक मानक ग्रंथ। इसके प्रथम अध्याय बीजक मंथन में कबीर साहेब की मौलिक वाणी 'बीजक' के आधार पर पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक तथा आध्यात्मिक विषयों का विशद विवेचन तथा अनेक शंकाओं का समाधान है। दूसरे अध्याय में पारखी संतों का इतिहास तथा ग्रंथ परिचय है। तीसरे अध्याय में पारख सिद्धांत का तात्त्विक एवं वैज्ञानिक चित्रण है। चौथे अध्याय में कबीर दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन है। पांचवें अध्याय में कबीर तथा कबीरपंथ से प्रभावित संतों का परिचय है। छठे अध्याय में कबीरपंथ का इतिहास है तथा सातवें अध्याय उपसंहार में समन्वयात्मक रूप में सत्य तथा जीवन के अंतिम लक्ष्य का सारगर्भित चित्रण है। कबीर साहेब पर शोध करने वाले तथा सामान्य लोगों के लिए यह अनुपम ग्रंथ है। पृष्ठ 783, मूल्य 215 रु०।

## निवेदन

1. पारख प्रकाश प्रतिवर्ष जनवरी, अप्रैल, जुलाई एवं अक्टूबर में प्रकाशित होता है। यदि इन महीनों की आखिरी तारीख तक आपको अंक न मिले, तो इसकी शिकायत अवश्य भेजें, ताकि आपको दूसरी प्रति भेजी जा सके। देर से शिकायत मिलने पर दूसरी प्रति भेजने में हमें काफी असुविधा होती है।

2. आशा है यह पत्रिका आपके लिए रुचिकर, ज्ञानवर्धक एवं प्रेरणादायी सिद्ध हुई होगी तथा आगे भी आप इसके ग्राहक बने रहना पसन्द करेंगे और दूसरों को भी इसके ग्राहक बनने के लिए प्रेरित करेंगे। इसे अधिक स्थायी तथा नियमित बनाने के लिए आप स्वयं इसके आजीवन ग्राहक तो बनें ही दूसरों को भी आजीवन ग्राहक बनने के लिए प्रेरित करें।

3. यदि आपका शुल्क इस अंक के साथ समाप्त हो रहा है तो अगले अंक के लिए अपना शुल्क यथाशीघ्र भेज दें, जिससे अगला अंक आपको समय से मिल सके। पत्र तथा शुल्क भेजते समय अपना ग्राहक नं० अवश्य लिखें।

एक प्रति 13 रुपये

वार्षिक 50 रुपये

आजीवन 1250 रुपये

लेख, कविता, सदस्यता-शुल्क भेजने तथा सब प्रकार के पत्र व्यवहार का पता

ग्राहक नं०

### पारख प्रकाश

संत कबीर मार्ग, प्रीतमनगर

इलाहाबाद-211011

फोन : 9451369965, 9451059832

Vist us : [www.kabirparakh.com](http://www.kabirparakh.com)

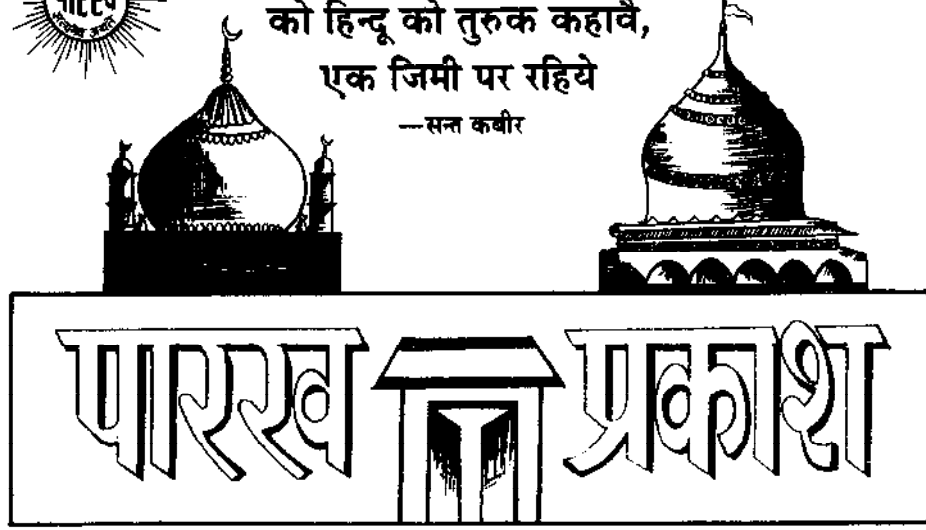
E-mail : [kabirparakh@yahoo.com](mailto:kabirparakh@yahoo.com)



सद्गुरवे नमः

को हिन्दू को तुरुक कहावै,  
एक जिमी पर रहिये

—सन्त कबीर



जौलों कर डोले पगु चालै, तौलों आश न कीजे ।  
कहहिं कबीर जेहि चलत न दीसे, तासु बचन का लीजे ॥ बीजक, शब्द-31 ॥

वर्ष 50]

प्रयागराज, पौष, वि. सं. 2077, जनवरी 2021, सत्कबीराब्द 622

[अंक 3

संतो सो उतरे भव पारा ।

मन की इच्छा सब ही त्यागे, छाड़े विषय विकारा ॥  
धीर गंभीर और सहज भाव सो, गह हरिनाम पियारा ।  
प्रेमभाव उपजे हिरदय में, साधु संगत आधारा ॥  
दया धीर संतोष धरे जिव, सुरति निरति चित धारा ।  
ज्ञान दृष्टि सबहिन को देखे, गहे शब्द टकसारा ॥  
सत सुकृत की नाव पे चढ़िये, ज्ञान गुरु कड़िहारा ।  
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, उतरो भवजल पारा ॥

× × ×

कुछ लेना न देना मगन रहना ॥

गहरी नदिया नाव पुरानी, केवटिया से मिले रहना ॥  
पाँच तत्त्व का बना पीजड़ा, जामें बोले मेरी मैना ॥  
तेरा पिया तेरे तन में बसा है, खोल कर देखो नैना ॥  
कहत कबीर सुनो भाई साधो, गुरु चरणों में लिपट रहना ॥

## आत्मज्ञान की महत्ता

मनुष्य जो कुछ भी करता है स्वयं को केन्द्र में रखकर, स्वयं के कल्याण, सुख-शांति, संतुष्टि के लिए ही करता है। उसे सबसे प्रिय अपना आपा है। इससे ज्यादा प्रिय कुछ भी और कोई भी नहीं है। जब उसे अपने स्वयं के लिए दुख-हानि, प्राण-संकट की आशंका या भय होता है तब वह माने गये प्रिय से प्रिय व्यक्ति, वस्तु का त्याग करने में न तो देर करता है और न संकोच। सांसारिक व्यक्ति-वस्तु की तो बात ही छोड़ें, माने गये ईश्वर-ब्रह्म, परमात्मा, खुदा, गॉड आदि की भक्ति-पूजा, उपासना, इबादत भी मनुष्य स्वयं अपने कल्याण, सुख-शांति की प्राप्ति के लिए ही करता है और जब उसे ईश्वर-ब्रह्म, परमात्मा की भक्ति-पूजा-प्रार्थना से कोई लाभ होता दिखाई नहीं देता तब वह पूजा-प्रार्थना, भक्ति-उपासना करना छोड़ देता है। इसीलिए कहा गया है कि मनुष्य को सबसे ज्यादा प्रिय अपना आपा है और सर्वाधिक अभीष्ट है अपना कल्याण, उद्धार और सुख-शांति।

बृहदारण्यक उपनिषद् में याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी के संवाद द्वारा इस बात को बहुत सुंदर ढंग से समझाया गया है—याज्ञवल्क्य यज्ञ-याग और आत्मज्ञान के बड़े पंडित और प्रवक्ता थे। उनके मैत्रेयी और कात्यायनी नाम की दो पत्नियां थीं। जब वे प्रौढ़ावस्था में गृहस्थाश्रम से उपरत होकर संन्यास लेना चाहे तब उन्होंने अपनी दोनों पत्नियों को बुलाकर उनमें धन का बटवारा कर दिया। तब मैत्रेयी ने कहा—“सर्वा पृथिवी वित्तेन पूर्णा स्यात् कथम् तेन अमृता स्याम्।” अर्थात् यह पूरी पृथ्वी धन से संपन्न होकर मेरी हो जाये तो क्या मैं अमर हो जाऊंगी?

याज्ञवल्क्य ने कहा—“अमृतत्वस्य तु न आशा अस्ति वित्तेन।” अर्थात् धन से अमरता की आशा नहीं

की जा सकती। तब मैत्रेयी ने कहा—“येनाहम् न अमृता स्याम् किमहम् तेन कुर्याम्।” जिससे मैं अमर नहीं हो सकती उसे लेकर मैं क्या करूंगी। भगवन्! आप तो मुझे उसी का उपदेश दें जिससे मुझे अमरता मिले, अमृतत्व की प्राप्ति हो।

मैत्रेयी की बात सुनकर याज्ञवल्क्य ने कहा—मैत्रेयी! तू समझदार है, जो धन पाकर संतुष्ट नहीं हुई। मैं तुम्हें अमर आत्मा का उपदेश दूंगा, जो तुम्हारा अपना ही स्वरूप है। सुनो, पति के स्वार्थ के लिए पति प्रिय नहीं होता, किन्तु अपने (आत्मा के) स्वार्थ के लिए पति प्रिय होता है। पत्नी के स्वार्थ के लिए पत्नी प्रिय नहीं होती, किन्तु अपने स्वार्थ के लिए पत्नी प्रिय होती है। पुत्र के स्वार्थ के लिए पुत्र प्रिय नहीं होता, किन्तु अपने स्वार्थ के लिए पुत्र प्रिय होता है। धन के स्वार्थ के लिए धन प्रिय नहीं होता, किन्तु अपने स्वार्थ के लिए धन प्रिय होता है। लोक (संसार) के स्वार्थ के लिए लोक प्रिय नहीं होता, किन्तु अपने स्वार्थ के लिए लोक प्रिय होता है। देवताओं के स्वार्थ के लिए देवता प्रिय नहीं होते, किन्तु अपने स्वार्थ के लिए देवता प्रिय होते हैं। सबके स्वार्थ के लिए सब प्रिय नहीं होते, किन्तु अपने स्वार्थ के लिए सब प्रिय होते हैं। जब अपने (आत्मा के) स्वार्थ के लिए सब प्रिय होते हैं, अपने (आत्मा, स्वयं के) स्वार्थसुख के लिए हम सब कुछ चाहते हैं तब अपना आपा, आत्मा ही देखने, सुनने, मनन करने एवं निदिध्यासन करने योग्य है। हे मैत्रेयी! आत्मा के दर्शन, श्रवण, मनन तथा विज्ञान से ही मानो सब कुछ जाना हुआ हो जाता है—“आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेय्यात्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं विदितम्।” (बृहदारण्यक उपनिषद् 2/4/5)

ऋषि और भी कहते हैं—“यह आत्मा पुत्र से अधिक प्रिय है, धन तथा अन्य सबसे अधिक प्रिय है, क्योंकि यह आत्मा सबसे अधिक अंतरतर है, समीप है और स्वयं है। यदि कोई व्यक्ति किसी दूसरी वस्तु को आत्मा से अधिक प्रिय मानता और कहता है तो उससे कहना चाहिए कि तेरी यह मान्यता तुझे आत्मा से, स्वयं अपने आप से मिलने से तुझे रोकेगी। जो किसी दूसरी

वस्तु को आत्मा से अधिक प्रिय मानता है वह आत्मा से, स्वयं से नहीं मिल सकता। दूसरी वस्तु को प्रिय मानने वाला आत्मस्थिति से सदैव दूर ही रहेगा। इसलिए आत्मा की ही उपासना करो, आत्मा का ही चिंतन करो। आत्मा को प्रियतम मानकर आत्मा की उपासना करने वाला, सदैव आत्मचिंतन करने वाला कभी अवसाद में, दुख में नहीं पड़ता। उसका पतन नहीं होता।” (बृहदारण्यक उपनिषद् 1/4/8)

जब व्यक्ति सब कुछ अपने (आत्मा, स्वयं) के स्वार्थ के लिए, सुख-शांति के लिए, कल्याण के लिए चाहता है तब अपना आत्मा ही जानने योग्य है। परंतु मनुष्य सब कुछ को जानने का प्रयास करता है, लोक कल्याण, भौतिक विकास, भौतिक सुख-समृद्धि के लिए बहुत कुछ को जानना आवश्यक भी है, परंतु मनुष्य जब तक स्वयं को (आत्मा को) सही ढंग से नहीं जान पायेगा तब तक वह चाहे कितना भी भौतिक विकास कर ले, वह सच्चे अर्थों में न सुखी हो सकता है, न संतुष्ट और न उसका भटकना कभी बंद हो सकता है। भौतिक समृद्धि से संपन्न होने के बाद भी मनुष्य आत्मज्ञान के अभाव में दर-बदर भटक रहा है। सद्गुरु कबीर का यह कथन कितना सटीक है—आत्म ज्ञान बिना नर भटके कोई मथुरा कोई कासी।

जीवन-निर्वाह के लिए, भौतिक विकास के लिए और लोककल्याण के लिए बहुत सारे ज्ञान की आवश्यकता है, इसे नकारा नहीं जा सकता, परंतु यह भी नहीं भूलना चाहिए कि आत्मज्ञान के अभाव में कोई भी ज्ञान और विकास मनुष्य को न तो मानसिक दुखों से छुटकारा दिला सकता है और न मानसिक सुख-शांति-संतुष्टि दे सकता है। मानसिक दुख, पीड़ा, जलन, चिंता, भय, असंतोष से छुटकारा और पूर्ण सुख-शांति-संतुष्टि की अनुभूति आत्मज्ञान से ही संभव है। श्वेताश्वतर उपनिषद् के ऋषि इसी बात पर बल देते हुए कहते हैं—

*यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः ।*

*तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति ॥6/20 ॥*

अर्थात्—जब मनुष्य चाम के समान आकाश को लपेट लेगा, तब आत्मदेव के ज्ञान बिना भी उसके दुखों का अंत हो जायेगा।

तात्पर्य है जिस प्रकार आकाश को चाम के समान लपेटना असंभव है उसी प्रकार आत्मा के ज्ञान के बिना दुखों का अंत होना भी असंभव है।

मनुष्य जो कुछ भी करता है अपने सुख-स्वार्थ के लिए ही करता है, परंतु जब उसे यही ज्ञात नहीं है कि मैं कौन हूँ, मेरा वास्तविक स्वरूप क्या है तब वह स्थिर कैसे हो सकता है और दुखों से पूर्णतया बच कैसे सकता है। प्रश्न होता है वह आत्मा कौन है, कहां है, जिसे जानने पर मनुष्य सभी दुःखों से छुटकारा पा सकता है। क्या वह आत्मा किसी लोक-लोकान्तर में निवास करता है? वस्तुतः वह आत्मा मनुष्य का अपना आपा है, अस्तित्व है, स्वत्व है, स्वयं है। वह उससे कभी अलग हो नहीं सकता, वह तो वही है ही। शरीर-संबंध से उस आत्मा को हृदय-निवासी कहा जाता है और वह सभी प्राणियों के हृदय में निवास कर रहा है। जब मनुष्य को इसका बोध हो जाता है तब मानो उसे सारी शक्तियां प्राप्त हो जाती हैं और वह महान हो जाता है।

बृहदारण्यक उपनिषद् में मैत्रेयी को उस आत्मा का उपदेश देते हुए याज्ञवल्क्य कहते हैं—“यह हृदय में बैठा आत्मदेव ही सर्वोच्च शक्ति है। ब्रह्म-शक्ति, क्षात्र-शक्ति, लोक-शक्ति, देव-शक्ति, जन-शक्ति, सब आत्मशक्ति ही है। जो अपने आत्मा को पहचान लेता है उसे मानो सब शक्तियां प्राप्त हो जाती हैं और जो आत्मा को नहीं पहचानता उसे सारी शक्तियां त्याग देती हैं। इसलिए आत्मा को, स्वयं को ही जानो। आत्मा को, अपने आप को, निज स्वरूप को पहचान लेने पर मनुष्य महान हो जाता है।

“जैसे गीली लकड़ियों को जलाने से अग्नि से पृथक उसमें से धुआं निकलता है, वैसे ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास, पुराण, विद्या, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र, व्याख्यान, अनुव्याख्यान आदि आत्मा से ही निकले हैं। जिसने आत्मा को पकड़ लिया, वह मानो सब कुछ पा गया।...वेद, इतिहास, पुराण आदि का आधार वाणी है और वाणी आत्मा द्वारा ही प्रकाशित

होती है। इसलिए सारे ज्ञान-विज्ञान का निधान आत्मा ही है।” (बृहदारण्यक उपनिषद् 2/4/6-11)

यहां जिस आत्मा की बात बतायी गयी है और कहा गया है कि आत्मा को जान लेने के बाद सब कुछ जाना हुआ हो जाता है और कुछ जानना बाकी नहीं रह जाता वह आत्मा हर व्यक्ति का अपना आपा, अस्तित्व ही है, उससे पृथक नहीं। उसे पाना नहीं है, किन्तु वह नित्य प्राप्त है। उसका केवल विस्मरण है। विस्मरण होने से मनुष्य का अपना स्वत्व होते हुए भी दूर-जैसा हो गया है। विस्मरण हो जाना ही दूर हो जाना है और स्मरण हो जाना पा लेना है। संतप्रवर श्री निर्मल साहेब कहते हैं—जाने बिना दूर जाने को नजदीक। देखो निरन्तर में अपरोक्ष तसदीक। (न्यायनामा)

हर व्यक्ति के पास जानने के लिए आंख, नाक, कान, जिह्वा, त्वचा और मन—ये छह साधन हैं और ये छहों बहिर्मुख होने से बाह्य विषयों का ही ज्ञान करते हैं, आत्मा का नहीं जो इनका प्रेरक है। आत्मा का, स्व का ज्ञान प्राप्त करने के लिए इनका संयम कर इन्हें अंतर्मुखी बनाना होगा। कठोपनिषद् में नचिकेता को समझाते हुए यमराज कहते हैं—“स्वयंभू (प्रकृति) ने इंद्रियों को बहिर्मुख बनाया है, इसलिए मनुष्य बाहर के विषयों को ही देखता है (जानता है)। वह अंतरात्मा को नहीं देखता। कोई बिरला अमरता (मोक्ष) का इच्छुक विवेकी मन-इंद्रियों को बाहर से लौटाकर और उन्हें संयमित करके भीतर आत्मा को देखता है। यथा—

*पराञ्चि खानि व्यतृणत्स्वयंभूस्तस्मात्पराङ्पश्यति नान्तरात्मन् ।  
कश्चित्तद्धीरः प्रत्यागात्मानमैक्षदावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन् ॥४/१ ॥*

मैं आत्मा हूँ, शुद्ध-बुद्ध, अविनाशी, अजर-अमर हूँ, मुक्तस्वरूप हूँ—प्रवचन सुनकर, पुस्तक पढ़कर आत्मा का बौद्धिक ज्ञान तो हो जायेगा, परंतु बौद्धिक ज्ञान मात्र से कोई आत्मलाभ नहीं कर सकता। आत्मलाभ के लिए बौद्धिक ज्ञान की नहीं अपितु तात्त्विक ज्ञान की आवश्यकता है। कोई बौद्धिक ज्ञानी तो है, बहुत पढ़ा-लिखा, बुद्धिमान है परन्तु असमाहित चित्त वाला है, उसका मन चंचल-असंयत है, उसने

दुष्कर्मों का त्याग नहीं किया है, तो उसका बौद्धिक ज्ञान उसे शांति नहीं दे सकता, वह आत्मलाभ नहीं कर सकता। उसके लिए समाहित चित्त, संयमित मन, इंद्रियजित होने के साथ समस्त दुष्कर्मों का त्यागकर शुभकर्म तथा सदाचार की आवश्यकता है। कठोपनिषद् के ऋषि कहते हैं—

*नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन ।*

*नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः ।*

*नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनामाप्नुयात् ॥ 2/23-24 ॥*

अर्थात्—यह आत्मा न प्रवचन से प्राप्त होता है, न धारणाशक्ति से और न ही ज्ञान की बातों को बहुत सुनने से प्राप्त होता है। भले कोई सूक्ष्म बुद्धि वाला हो और बौद्धिक रूप से आत्मा को जान लिया हो, परन्तु यदि उसने दुष्कर्मों-गलत कर्मों का त्याग नहीं किया है, अशांत मन वाला है, कुतर्क में उलझा हुआ है और उसका चित्त चंचल है, तो उसे आत्म-लाभ, आत्मसाक्षात्कार नहीं हो सकता।

पढ़-सुनकर मैं देह नहीं आत्मा हूँ ऐसा बौद्धिक ज्ञान तो किसी को भी हो सकता है और हो भी जाता है, परन्तु इससे किसी को आत्मसाक्षात्कार, आत्मलाभ नहीं हो सकता। बौद्धिक आत्मज्ञान के पश्चात् आत्मसंयम, आत्मशोधन एवं आत्म-परिष्कार की आवश्यकता है तब आत्मा का तात्त्विक ज्ञान होगा और इससे ही आत्मसाक्षात्कार होगा और वह आत्मा अपनी महिमा में, गरिमा में, स्थिति में प्रतिष्ठित हो सकेगा। आत्मसंयम और आत्मशोधन से मन-इंद्रियों की सारी चंचलता, बहिर्मुखता एवं मलिनता दूर हो जाती है और मन स्वच्छ स्फटिक शिला की भांति पारदर्शी हो जाता है और तब आत्मसाक्षात्कार होता है। श्री निर्मल साहेब कहते हैं—

*आदर्श मति में मैल से भरा है।*

*निज रूप तिनको नहीं दिख पड़ा है॥*

*बुद्धि स्वच्छ निर्मल अपनी बनाओ।*

*अपने स्वतः रूप को देख पाओ॥*

(न्यायनामा)

श्वेताश्वतर उपनिषद् के ऋषि कहते हैं—

यथैव बिम्बं मृदयोपलिप्तं तेजोमयं भ्राजते तत्सुधान्तम् ।  
तद्वात्मतत्त्वं प्रसमीक्ष्य देही एकः कृतार्थो भवते वीतशोकः ॥

(2/14)

अर्थात्—जैसे मिट्टी में लिपटी हुई मणि को अच्छी तरह से धो देने पर वह चमकने लगती है वैसे ही जब साधक अपने आत्मतत्त्व को ठीक से समझकर मन के सारे विकारों को हटा देता है, मन को अच्छी तरह से मांज लेता है, उसे निर्मल बना लेता है तब वह सबसे असंग होकर कृतकृत्य हो जाता है और शोक से सर्वथा पार हो जाता है।

आत्मसाक्षात्कार का अर्थ यह नहीं है कि जैसे हम आंखों से अन्य वस्तुओं को देखते हैं वैसे आत्मा को देखेंगे और आत्मलाभ का भी यह अर्थ नहीं है कि जैसे हम इंद्रियों से बाहर के विषयों को ग्रहण करते हैं, पकड़ते हैं, प्राप्त करते हैं वैसे आत्मा को भी ग्रहण कर लेंगे, पकड़ लेंगे और प्राप्त कर लेंगे। आत्मा, स्व चेतन तत्त्व कोई भौतिक पदार्थ नहीं है जिसे इंद्रियों से देखा, सुना, छुआ और पकड़ा-पाया जा सके। सोचना यह है कि मन-इंद्रियां किसकी प्रेरणा से विषयों को ग्रहण करते एवं छोड़ते हैं। मन-इंद्रियों का प्रेरक कौन है? जो मन-इंद्रियों का प्रेरक है वही तो आत्मा है। वही मैं हूँ। मैं हूँ, मेरा होना ही आत्मा का होना है। मैं आत्मा ही तो मन-इंद्रियों का प्रेरक है। कठोपनिषद् के ऋषि कहते हैं—

नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा ।

अस्तीति ब्रुवतोऽन्यत्र कथं तदुपलभ्यते ॥6/12 ॥

आत्मा को न वाणी से पाया जा सकता है, न मन से और न आंखों से। अस्तीति—‘है’ यह कहने वाले के अलावा वह कैसे मिल सकता है।

मेरा होना ही आत्मा के होने का सबसे प्रबल प्रमाण है। सब पर संदेह किया जा सकता है, किन्तु स्वयं पर संदेह नहीं किया जा सकता। ईश्वर है या नहीं, स्वर्ग-नरक है या नहीं, पुनर्जन्म, कर्म-फल भोग, बंध-मोक्ष होते हैं या नहीं—दो प्रकार के उत्तर मिलेंगे। कुछ लोग कहेंगे होते हैं, कुछ लोग कहेंगे नहीं होते तो कुछ लोग कहेंगे मालूम नहीं। परंतु किसी से भी पूछो—तुम हो या

नहीं। सबसे एक ही उत्तर मिलेगा—मैं तो हूँ ही। यदि कोई कहता है कि मैं नहीं हूँ तो ऐसा कहने के लिए भी उसका होना जरूरी है। है तभी तो कह रहा है—मैं नहीं हूँ। नहीं होता तो कौन कहता कि मैं नहीं हूँ। सब पर संदेह किया जा सकता है किन्तु अपने होने पर संदेह नहीं किया जा सकता, क्योंकि मैं तो हूँ ही। भामतीकार वाचस्पति मिश्र का यह कथन कितना सटीक है—“न हि कश्चित् संदिग्धे ऽहं वा न ऽहं वा इति।’ अर्थात् किसी को यह संदेह नहीं होता कि मैं हूँ या नहीं हूँ।

हर मनुष्य को सोचना चाहिए कि मैं जो कुछ कर रहा हूँ किसके लिए कर रहा हूँ। अपने लिए ही तो। तो फिर मैं कौन हूँ? मैं ही आत्मा हूँ। इस आत्मा को आप जीव, चेतन, रूह, सोल, ईश्वर, ब्रह्म, परमात्मा, खुदा, गॉड आदि कुछ भी कह लें, आपकी मर्जी! नाम बदलने से वस्तु तथ्य बदल नहीं जायेगा। वह तो वही रहेगा। परंतु यह भी याद रखें कि वह आपसे अलग नहीं है। वही आप हैं, आपका अस्तित्व है, स्वत्व है, आपसे भिन्न कुछ भी नहीं। यदि आप यह कहते हैं कि मैं आत्मा को नहीं मानता, तो भी आप रहेंगे। आपके न मानने से वस्तु तथ्य का नाश नहीं हो जायेगा और न उसमें कुछ परिवर्तन ही होगा। आप आत्मा को नहीं मानते, मत मानो। स्वयं को तो मानते हैं न, स्वयं तो हैं न, तभी तो कह रहे हैं कि मैं आत्मा को नहीं मानता। आत्मा का अर्थ ही होता है—स्वयं। उसी स्वयं को, मैं को केन्द्र में रखकर, उसी के सुख-शांति के लिए आप सब कुछ कर रहे हैं। आत्मा जैसी कोई चीज नहीं होती, वह केवल कल्पना है, भ्रम है, दृढ़तापूर्वक यह कौन कह रहा है। कहने वाला तो है ही तभी तो कह रहा है। यदि कहने वाला ही न हो तो कहेगा कौन? जो कह रहा है आत्मा जैसी चीज नहीं है, वही आत्मा है। आपका दृढ़ निश्चय है कि आत्मा को, आत्म अस्तित्व को नकार कर ही मोक्ष या निर्वाण हो सकता है। तो जिसका मोक्ष या निर्वाण होगा वही आत्मा है और वही आप हैं। आप सबको भले नकार दें, स्वयं को तो नकार ही नहीं सकते।



इसीलिए कहा गया है कि सब पर संदेह किया जा सकता है, किन्तु मैं पर, स्वयं पर, आत्म अस्तित्व पर संदेह नहीं किया जा सकता। जो सबको जान रहा है, सबको प्रमाणित कर रहा है, वह कौन है? वही आत्मा है, आप हैं। सारे प्रमाणों का प्रमाता यह आत्मा, मैं तत्त्व ही है। किसी ने बहुत सुंदर कहा है—सर्व प्रमाण सत्तानाम् प्रमाणं अहं एव हि। अर्थात् सारे प्रमाणों को प्रमाणित करने वाला मैं ही हूँ। यह जो मैं कहने वाला आत्म अस्तित्व है वह स्वयं नित्य सत्तावान है। कोई भी ज्ञान बिना ज्ञाता के नहीं हो सकता। उसके लिए एक नित्य सत्तावान पदार्थ होना चाहिए। स्वामी शंकराचार्य कहते हैं—

*अस्ति कश्चित् स्वयं नित्यमहंप्रत्ययलम्बनः ।*

*अवस्थात्रयसाक्षी सन्यञ्चकोशविलक्षणः ॥*

(विवेक चूड़ामणि 125)

अर्थात्—मैं बोध, मैं ज्ञान का आधार कोई एक नित्य स्वयं तत्त्व है, जो पांचों कोशों से विलक्षण तथा तीनों अवस्थाओं (जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति) का साक्षी-द्रष्टा है।

जो मैं बोध का आधार नित्य स्वयं सत्ता है, वही आत्मा है। हर व्यक्ति का अपना अस्तित्व, स्वत्व एवं होना है। यह आत्मा ही सारे ज्ञान-विज्ञान का आधार है। यही तो सबको जानता-मानता है। यह न हो तो कौन किसको जाने-माने। परन्तु सबको जानने-मानने वाला आत्मा स्वयं को नहीं जान पा रहा है, इसीलिए दीन-हीन बना दर-बदर सुख-शांति की भीख मांगते हुए भटक रहा है और ठोकरें खा रहा है। यह अनादिकाल से मोह-नींद में सोते आ रहा है। जब यह मोह-नींद से जागकर अपने को ठीक से जानकर सारी विषयासक्ति को त्यागकर अपने आप में स्थित हो जायेगा तब यह सम्राट हो जायेगा, जैसा कि यह मूलतः है ही। इसके लिए आवश्यक है आत्मज्ञानी पुरुष की संगति। कठोपनिषद् के ऋषि कहते हैं—“उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।” उठो, जागो और श्रेष्ठ ज्ञानी पुरुष के पास जाकर आत्मज्ञान प्राप्त करो।

हर व्यक्ति को यह समझना चाहिए कि वह नाशवान शरीर नहीं, किन्तु अविनाशी आत्मा है, जीव है।

क्षणभंगुर विनश्वर प्राणी-पदार्थों का लोभ-मोह छोड़कर आत्मभाव में स्थित होना उसका अपनी महिमा में, स्थिति में स्थित होना ही आत्मप्रतिष्ठित होना है। उसके लिए हर समय तीन सूत्रों का अभ्यास-प्रतिपादन करते रहना होगा—“सोऽन्तवेलायामेतत्त्रयं प्रतिपद्येताक्षित मस्यच्युतमसि प्राणसंशितमसीति।” अर्थात् मैं अक्षत-अविनाशी हूँ, अच्युत-एकरस हूँ और प्राणों से भी सूक्ष्म आत्मा हूँ। (छांदोग्य उपनिषद् 3/17/6)

मनुष्य का परम लक्ष्य उससे अलग कहीं नहीं है। आत्मतत्त्व का निर्भ्रान्त बोध न होने के कारण मनुष्य अनेक नाम रखकर अपने लक्ष्य को बाहर से पाना चाहता है। परंतु वह यह भूल जाता है कि बाहर से जो कुछ भी मिलेगा, उसका नाम चाहे जो कुछ रख लिया जाये, वह सदा साथ नहीं रह सकता और न मनुष्य के अपने आत्म अस्तित्व में वह घुल-मिल सकता है। वस्तुतः पाना कुछ है नहीं, सब तरफ से लौटकर अपने आप शान्त रह जाना है।

मनुष्य चाहे जो कुछ कर ले जब तक उसे यह दृढ़ विश्वास नहीं होगा कि जो मैं पाना चाहता हूँ वह मैं ही हूँ, यदि मैं ईश्वर-ब्रह्म-परमात्मा पाना चाहता हूँ तो वह भी मेरा अपना ही स्वरूप है, मैं और मेरा लक्ष्य दो नहीं एक ही है तब तक स्थिर नहीं हो सकेगा और उसका कल्याण नहीं हो सकता। स्वामी शंकराचार्य कहते हैं—

*वदन्तु शास्त्राणि यजन्तु देवान्*

*कुर्वन्तु कर्माणि भजन्तु देवताः ।*

*आत्मैक्यबोधेन विना विमुक्तिर्न*

*सिध्यति ब्रह्मशतान्तरेऽपि ॥*

(विवेक चूड़ामणि 6)

अर्थात्—चाहे कोई शास्त्रों की कितनी व्याख्या करता रहे, वैदिक देवी-देवताओं के नाम यज्ञ-हवन करता रहे, बहुत कर्मकाण्ड तथा देवताओं की प्रार्थना-भक्ति करता रहे, परन्तु जब तक आत्मा और परमात्मा एक ही है, ऐसा बोध प्राप्त कर अपनी आत्मा में ऐक्य स्थापित नहीं कर लेता, तब तक सौ ब्रह्मा के काल तक भी उसकी मुक्ति नहीं हो सकती।

—धर्मेन्द्र दास

## साधना-पथ में सावधानी

लेखक—भूपेन्द्र दास

1. यदि गाड़ी में ब्रेक न हो, घोड़ा में लगाम न हो, हाथी में अंकुश न हो तो क्या होगा? ऐसे गाड़ी, घोड़ा और हाथी की सवारी कोई नहीं करना चाहेगा क्योंकि इनकी सवारी करने से जीवन से हाथ धोना पड़ सकता है। इसी प्रकार जिन लोगों का जीवन असंयमित है, इन्द्रियों में संयम नहीं है, 'मन' जिनका सधा हुआ नहीं है ऐसे लोगों की संगति साधक को कभी नहीं करनी चाहिए। जो साधना करना चाहे ऐसे साधकों को चाहिए कि वे संतों के बीच रहकर अपना सुधार व उद्घाटन करें। शांति-प्रिय संतों की संगत ही साधक के लिए अभेद्य किला है। और सत्संग रूपी सरोवर ही असली गंगा है। जिसमें नित्य निमज्जन करते रहने से मन के मैल धुलते हैं और मन शुद्ध-निर्मल होकर आत्मशांति प्राप्त होती है।

2. आपने एक मटका और एक गुलदस्ता साथ में खरीदा। घर लाते ही 20 रुपये का मटका फूट जाये तो आपको इस बात का दुख होता है। क्योंकि मटका इतनी जल्दी फूट जायेगा ऐसी आपने कल्पना भी नहीं की थी। परन्तु गुलदस्ता के फूल जो 100 रुपये के हैं वे शाम तक मुरझा जायें तो भी आप दुखी नहीं होते क्योंकि ऐसा होने वाला ही है यह आपको पहले से पता है।

मटके की इतनी जल्दी फूटने की अपेक्षा नहीं थी तो फूटने पर दुख का कारण बना। परन्तु फूलों से अपेक्षा नहीं थी, इसलिए वे दुख का कारण नहीं बने। इसका मतलब साफ है कि जिसके लिए जितनी अपेक्षा ज्यादा उसकी तरफ से उतना दुख ज्यादा और जिसके लिए जितनी अपेक्षा कम उसके लिए उतना ही दुख भी कम। अतः अपेक्षाओं की उपेक्षा करते रहना चाहिए, यही सुख से जीने का तरीका है।

3. काम, क्रोध, लोभ, मोहादि नाना विकारों को सहो। इन विकारों को यदि आप सहन करने में समर्थ हो गये तो आपका काम बन जाता है। जिन्हें हम

महापुरुष कहते हैं उन्होंने यही किया। जिनके अंदर के विकार शमित हो जाते हैं वे पूरे समाज में आदर्शरूप हो जाते हैं और स्वकल्याण का आधार भी।

4. मनुष्य का स्वभाव होता है कि वह सबको वश में करना चाहता है, मगर स्वयं स्ववश नहीं होना चाहता। स्ववश होना तो बहुत ऊंची बात हो गयी वह स्वयं दूसरों के वश होना नहीं चाहता। बहू चाहती है सासु मेरे वश में रहे, पति वश में रहे, बच्चे भी मेरे वश में रहे। पति चाहता है पत्नी मेरे वश में रहे। मां चाहती है बेटा-बहू मेरे कब्जे में रहे। पर ऐसा होता नहीं है। परवशता किसी को भी प्रिय नहीं है। सब स्ववशता चाहते हैं। हम बाहर वालों को वश में करना चाहते हैं। जो कभी संभव नहीं है। और जो सर्वथा संभव है वह काम हम नहीं करते।

अपने मन और इन्द्रियों को स्ववश रखना सब समय संभव है। हम इन्हें अपने वश में कर लिये तो मानो सब हमारे वश में हो गये। अपने को वश में कर लेने पर कोई चाहनाएं-कामनाएं रह नहीं जातीं, फिर औरों को स्ववश करने की बात भी नहीं रह जाती। फिर भी अगर हम दूसरों को स्ववश करना चाहते हैं तो सबसे प्रेमपूर्ण व्यवहार करें। हमारे इस कृत्य से वे स्वयं वश में हो जायेंगे।

5. हमें समाज से भोजन, वस्त्र व जीवन गुजर की अन्यान्य वस्तुएं सहजता से प्राप्त हो रही हैं। लोग हमें क्यों देते हैं? ताकि हम परमार्थ का काम करते चलें और लोगों को प्रेरणा भी देते रहें। हमें सोचना यह है कि लोगों की अपेक्षाओं का हम कितना आदर कर पा रहे हैं। हम साधुता में कितने प्रतिशत सही ठहरते हैं। हमारा वेश तो साधु या भक्त का है मगर मन फकीरी में लगता है या नहीं। हम समाज की और कोई सेवा न कर पायें कोई बात नहीं, मगर अपना काम अपने लिए तो करें। हम अपने मन को अच्छी तरह से फकीर बना लें बस।

इतना यदि हम नहीं करते हैं तो समाज का कर्ज हमारे ऊपर लदता चला जा रहा है। कपड़ा वैराग्य का चिह्न नहीं है। वैराग्य है अनासक्त मन! अतः इसी का विकास करें।

6. मनुष्य का मन छोटे बच्चे के समान अत्यंत चंचल है। बच्चा कभी खाने की चीजें मांगता है तो कभी खेलने की वस्तुएं। नाना प्रकार की खेलने और खाने की वस्तुएं देकर भी किसी बच्चे को संतुष्ट नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार हमारा मन है। यह नाना प्रकार के भोगों को सुख मानकर भोगना चाहता है। आंख, नाक, कान, जीभ, त्वचा सबका अपना-अपना विषय-भोग है। मन उन्हीं सब में रमना चाहता है। परन्तु जीवन भर अतृप्ति ही बनी रहती है। जैसे बच्चों द्वारा खिलौनों से भोजन अथवा नाना व्यंजन बनाया जाता है, परन्तु उनसे पेट कभी भर नहीं सकता ऐसे ही केवल इन्द्रियों के स्वाद मात्र से तृप्ति कैसे मिल सकती है? मन को जब तक हम आत्मप्रतिष्ठा में प्रतिष्ठित नहीं करते हैं तब तक मन का भटकना बंद नहीं होता। अतः मन को विषयों से मोड़ें। काम-वासना को संतजन भक्ति में लगा देते हैं। क्रोध को अपने दोषों के निरीक्षण में और लोभ को ज्ञानार्जन में लगा देते हैं। ज्ञानी आदमी का मन सदैव ज्ञान में रमने लगता है। तब विवेक प्रतिष्ठित होता है।

7. जीवन संग्राम बहुत ही विकट है। मनुष्य को मुख्यतः तीन क्षेत्रों में यह संग्राम लड़ना पड़ता है। प्रथम में वह प्रकृति-जगत से लड़ता है। दूसरा वह अन्य मनुष्यों से लड़ता है। तीसरा वह अपने आप से लड़ता है। उपरोक्त पहली लड़ाई में वह भौतिक विज्ञान से लड़ता है। प्रकृति प्रदत्त वनों की कटाई करता है। नदियों के पानी को रोकता है। मोटर-गाड़ियों के माध्यम से वातावरण को प्रदूषित करता है। जिसका खामियाजा बाद में विराट रूप में भुगतना पड़ता है। दूसरी लड़ाई में वह समाज के लोगों से लड़ता है। धन, पद, प्रतिष्ठा, मान, सम्मान, महंती को पाने अथवा बचाये रखने के लिए अपने ही बिरादरों से, पड़ोस के लोगों से तथा अन्य लोगों से लड़ता है। इस संग्राम में कुछ लोग

विजयी हो जाते हैं तो कुछ लोग असफल होते हैं पर दोनों को अन्त में एक ही चीज हाथ आती है वह है मन की अशांति।

तीसरी लड़ाई है मनोविज्ञान की। हर आदमी अपने आप से सब समय जूझता रहता है। शरीर में रोग लगने पर शरीर विरोधी तत्त्वों का सामना करता है। परंतु उनसे भी अधिक मन की चिन्ता से जलता रहता है। “चिन्ता” अपने-आप से लड़ने का सबसे प्रबल उदाहरण है। इसमें लड़ने वाला कोई दूसरा नहीं होता। एक व्यावहारिक उदाहरण से समझें। बेटी विवाह योग्य हो चुकी है। पिता के मन में चिन्ता लगी है कि विवाह कैसे संपन्न होगा। पुत्री, पुत्र, पत्नी सब अनुकूल है पर आदमी अपने से ही लड़ रहा है। कोई आदमी अपने जीवन से खिन्न होकर खुदकुशी कर लेता है। आप क्या समझते हैं कि उसने ऐसा सोचा और कर लिया। नहीं, भगवन, ऐसा नहीं है। फांसी के फंदे पर तो वह एक ही बार झूलता है पर अपने मन में वह हजारों बार झूल चुका होता है। कभी यह भी सोचता है कि ऐसा मैं नहीं करूंगा। ऐसा करना मेरे लिए, समाज-परिवार के लिए ठीक नहीं होगा, इसके बाद वह फिर ऐसा कर ही लेता है। आदमी अपने ही मन से हजारों बार नहीं, लाखों-करोड़ों बार भीतर-भीतर लड़ता रहता है तब कहीं बाहर परिणाम में आता है।

8. शरीर कुरूप है चलेगा किन्तु मन को कुरूप न बनने दें। शरीर बौना है कोई बात नहीं चलेगा किन्तु विचारों को, स्वचिंतन को बौना न होने दें। शरीर की आंख अंधी है फिर भी चलेगा किन्तु अपनी सोच अंधी है, विचार अंधे हैं यह नहीं चलेगा, क्योंकि तब तो जीवन सब समय दुख, पीड़ा, चिन्ता, अवसाद, कुंठा तनाव से भरा रहेगा। इसलिए कुछ कर पायें या न कर पायें, अपनी सोच को, अपने विचार को, अपने मन को सुंदर अवश्य बनायें, इसी में जीवन का सारा सुख समाया है।

9. यदि काम को जीतना चाहते हो तो बीमार प्राणियों को देखो, देह की नश्वरता पर विचार करो, मृत



देह को देखो, शव पर विचार करो अथवा मन-ही-मन कल्पना करो कि शरीर की चमड़ी हट जाये तो भीतर कौन-सा मसाला भरा है।

लोभ को जीतना चाहते हो तो कमाये हुए धन का दान करो। क्रोध को पराजित करना चाहते हो तो क्षमा का गुण अपने अंदर विकसित करना होगा। मोह को जीतना चाहते हो तो श्मशान में जाकर देखो कि आखिर कोई किसी का नहीं होता। अहंकार को विसर्जित करना चाहते हो तो जिस बात का अहंकार हो धन, सत्ता, सौन्दर्य इत्यादि का उसमें अपने से बड़ों को देखो। इस प्रकार एक-एक दोष पर विजय प्राप्त करने का अलग-अलग उपाय है किन्तु जिसे गुरु-भक्ति रूपी संजीवनी मिल गई उसे काम, क्रोध, लोभ, मोह दूर करने के लिए अलग-अलग प्रयास नहीं करना पड़ता। ये सारे दोष “गुरु भक्ति” के प्रताप से एक साथ तिरोहित हो जाते हैं।

जिसने गुरु की दासता स्वीकार कर ली वह अनपढ़ होते हुए भी विद्वानों को पढ़ाता है। नासमझ कहलाते हुए भी समझदारों को समझाने की क्षमता रखता है। इसीलिए कहा गया—“नास्ति तत्त्वं गुरोः परम् ॥” अथवा

जाम पर जाम पीने से क्या फायदा।  
नशा शाम चढ़ी सुबह उतर जायेगी।  
पी लो प्याला गुरु भक्ति का।  
पूरी जिन्दगी नशे में गुजर जायेगी।

10. कहा जाता है कि एक बार श्रीराम ने अपने परम भक्त हनुमान जी से पूछा—“तुम मुझे क्या समझते हो?” हनुमान जी ने बड़े तत्त्वदर्शी ढंग से जवाब दिया—महाराज, लोकदृष्टि से तो आप राजा हैं और मैं आपकी प्रजा हूँ। व्यवहारदृष्टि से कहूँ तो आप स्वामी हैं और मैं आपका सेवक हूँ। पर ज्ञानदृष्टि से कहूँ तो “जो आप हैं वही मैं भी हूँ।” हनुमान जी के इस उत्तर से श्रीराम जी बहुत प्रसन्न हुए।

हर व्यक्ति के अंदर ज्ञान ज्योति विद्यमान है। सब जीव परमात्म स्वरूप हैं। स्त्री, पुरुष, नपुंसक, बालक, वृद्ध, जवान सबके भीतर वही ज्योति विद्यमान है।

अपने आत्मस्वरूप को समझकर उसमें स्थित होने की आवश्यकता है। हमारे भीतर अज्ञान का अंधेरा है। यही अपनी स्थिति से रोकता है। हम जहां भी रहें हमारी दृष्टि आकाश के समान स्वच्छता की ओर होनी चाहिए। तन पवित्र हो, मन शांत हो, कपड़े-बर्तन इत्यादि सब साफ-पाक होना चाहिए। मन की प्रसन्नता प्रत्येक परिस्थिति में स्थिर रहना चाहिए। यथासंभव यह प्रयास होना चाहिए कि हमारी प्रसन्नता कहीं खोने न पाये।

11. किसी क्षेत्र में सफलता की प्राप्ति उसी को होती है जिसके मन में सफलता प्राप्ति का निश्चय रहता है। कोई प्रयत्न तो कर रहा है सफलता पाने के लिए परंतु मन में निरंतर असफलता का भय पाल रहा है तो वह किसी भी हालत में सफल नहीं हो सकता।

जितना हो सके सावधानी बरतनी चाहिए, किन्तु मृत्यु से भयभीत नहीं होना चाहिए। जिन्दगी में मौत केवल एक बार आती है। कोई व्यक्ति अपने जीवन में दो बार नहीं मरता। मृत्यु क्या है? कबीरपंथ के मूर्धन्य विद्वान, परम वीतराग संत सद्गुरु श्री अभिलाष साहेब जी कहते थे—मृत्यु है सारे झंझटों, उपद्रवों एवं दुखों से छुटकारा। तब क्यों उससे भयभीत होते हो। उसके तो स्वागत की तैयारी सब समय रखनी चाहिए। जो व्यक्ति अपने मन को हर समय अपने आदेशों का पालन करने के लिए प्रशिक्षित करता रहता है वही आत्मसंयमी, आत्मजयी एवं कालजयी हो सकता है।

12. अंग्रेजी की एक सुंदर सूक्ति है—  
Uncleanliness of the mind is for more dangerous than that of the body अर्थात् मन का मैल शरीर के मैल से भयंकर है। शरीर का मैल शरीर तक ही पीड़ित करता है। परन्तु मन का मैल एक जन्म तो क्या कई जन्मों तक पीड़ित करता रहता है। हम अपने मन को खराब करके दूसरों का नुकसान नहीं करते हैं बल्कि अपनी मंजिल की दूरी को और दूर करते जाते हैं। मन को नित्य शुद्ध-बुद्ध, निर्मल रखने का साधन है—ध्यान, चिंतन, गुरु-भक्ति। लोटा को अगर रोज न मांजा गया तो काला पड़ जाता है। यदि ध्यान-साधना नित्य न

किया गया तो चित्त अशुद्ध हो जाता है। किन्तु लोटा अगर सोने का है तो न मांजने पर भी काला नहीं पड़ता अर्थात् मन साधना की उच्चतम अवस्था में पहुँच चुका है तो साधना का प्रारंभिक अभ्यास नहीं करना पड़ता। वह सब समय समाधिनीलता की दशा में रहता है। ऐसे साधक का मन सब समय मक्खन बना रहता है। ये बातें उच्च साधना की हैं। इन बातों को पढ़कर कोई आलस्य व प्रमाद में पड़कर साधना को शिथिल न करें बल्कि इन शब्दों से प्रेरित होकर साधना की उच्च शिखर को छूने का अभ्यास करना चाहिए।

13. मनुष्य भ्रम में पड़कर सोचने लगता है कि बाहरी परिस्थितियों में परिवर्तन करके उसे शांति मिलेगी। वस्तुतः शांति तो उसके स्वयं के भीतर ही है। जंगल में जाने मात्र से शांति नहीं मिल जाती। मन के नाना संकल्पों-विकल्पों के जंगल को काटने से शांति मिलती है। शांति पाने के लिए हमें बाहरी परिस्थितियों में नहीं स्वयं अपने भीतर परिवर्तन करना पड़ेगा। पैर में कांटा चुभ जाने मात्र से यदि मैं यह सोचूँ कि दुनिया का सारा कांटा जलाकर मैं भस्म कर दूँगा तो यह मेरी नादानि ही मानी जायेगी। समाधान यह होगा कि मैं अपने पैरों में जूते पहनकर चलूँ जिससे कांटे-कंकड़ का कष्ट मुझे न झेलना पड़े। वर्षा के कष्ट से दुखी होकर कोई यह सोचे कि वर्षा को ही बंद कर दूँ तो यह संभव नहीं है। उचित यह है कि मैं छाता खोलकर अपने को वर्षा के प्रभाव से बचा लूँ। अतः जीवन संग्राम से जूझने के लिए हमें अपने मन में परिवर्तन लाना होगा, अपनी दृष्टि बदलनी होगी। इसीलिए कहा गया—“जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि”।

14. सम्मान देने वालों को तो सभी सम्मान देते हैं। प्रशंसा करने वालों की सभी प्रशंसा करते हैं। विशेषता तो अपमान करने वालों को सम्मान देने में, वैर करने वालों से प्रेम करने में तथा निंदा करने वालों की प्रशंसा करने में है। यही अपने लिए सुख का रास्ता एवं उत्तम व्यवहार का राज है। यह सदैव याद रखें प्रतिशोध एवं बदला लेने की अपेक्षा क्षमा करना सदैव अच्छा होता है। इसलिए अपने दिल से प्रतिशोध, बदला लेने की

भावना का त्याग करें और उसमें से प्रेम की निर्मल गंगा अविरल प्रवाहित होने दें। फिर देखिएगा आपके जीवन का नंदनवन सदैव हरा-भरा एवं सुवासित रहेगा।

15. दुनिया का सारा प्रपंच एक दिन छूट जायेगा। देह न रहेगी, देह संबंधी प्राणी-पदार्थों का भी कोई अस्तित्व न होगा। यहां सब कुछ स्वप्नवत है। यहां कुछ भी स्थिर रहने वाला नहीं है। इस परिवर्तनशील संसार में सब कुछ हर क्षण मिटते और बनते रहते हैं। फिर किसके लिए तुम मोह करते हो। अरे मूर्ख मन! तुम्हारा मोह तुम्हारे ही मन की कमजोरी है। “तन है माटी, मन है माटी, माटी सब संसार है।”

काल चक्र निरंतर चल रहा है। लोग एक-एक उठ-उठ कर दुनिया से सदा के लिए चले जा रहे हैं। आजकल में हमारी भी यही दशा होने वाली है। किस चीज का अहंकार करते हो। अहंकार तो सिर्फ धोखा है। इसलिए हे मन! समस्त कामनाओं का त्याग करते हुए अपने स्वरूप में निमग्न हो जाओ, यही कल्याण-दशा है।

आदमी मिट्टी के टुकड़ों को पाने के लिए रात-दिन ललचाता रहता है। अपने को धोखा देता है। सद्गुरु कबीर की भाषा में कहें तो “फूटे नैन हृदय नहिं सूझे”। अल्पता, दीनता और अकेलापन सबके जीवन में आना है, इन भावों की स्मृति मन में बनाकर रखने से अनासक्ति की साधना पुष्ट होती है। “अंत दशा ले आदि में सोई साँच बैराग।” □

❖ जिस तरह खौलते पानी में प्रतिबिम्ब नहीं देखा जा सकता उसी तरह क्रोध की स्थिति में सत्य न तो देखा जा सकता है और न समझा जा सकता है।

❖ बलवान वह नहीं है जो क्रोध की स्थिति में खूब चीखता-चिल्लाता है किन्तु बलवान वह है जो क्रोध की स्थिति में चुप-शांत रहता है और क्रोध को अपने काबू में रखता है।

## धर्म क्या है?

लेखक—श्रद्धेय संत श्री ज्ञान साहेब जी

(गतांक से आगे)

जो खराब प्रकृति का आदमी है, वह अगर अपने खराब स्वभाव को नहीं छोड़ता है तो सज्जन आदमी को भी अपनी सज्जनता नहीं छोड़ना चाहिए। अतः सबको क्षमा की आवश्यकता है और इसी प्रकार दम की भी आवश्यकता है।

*मन विषयन से रोकना, शम तेहि कहत सुधीर।*

*इन्द्रियगण को रोकना, दम भाषत बुध वीर॥*

दम को अगर पलट दें तो मद बन जाता है। मद से आदमी का पतन हो जाता है और दम से आदमी का उत्थान होता है। अतः जीवन में दम की बहुत बड़ी आवश्यकता है।

श्रीमद्भागवत महापुराण में राजा पुरुरवा की कथा आती है। राजा पुरुरवा चक्रवर्ती सम्राट है लेकिन उसका पतन हो जाता है। वह अपने पतन के खास कारण पर विचार करता है, सोचता है कि मेरा इतना पतन क्यों हो गया? वहां भागवतकार लिखते हैं—

*स्वार्थस्या कोविदं धिङ् मांमूर्खः पण्डितमानिनम्।*

*योऽहमीश्वर तां प्राप्य स्त्रीभिर्गौरव वज्जितः॥*

मुझको धिक्कार है कि अपने ही हानि-लाभ का पता मुझे नहीं है किन्तु मैं अपने को बहुत बड़ा पंडित मानता हूँ। वह पंडित कैसा जिसको अपने हानि-लाभ का पता ही न हो। भारतीय परम्परा में पंडित शब्द बहुत महत्त्वपूर्ण है। आत्मविषयक बुद्धि का नाम पण्डा है और वह जिनमें हो उन्हें पंडित कहते हैं।

भागवतकार ने लिखा कि 'पंडितो बंधमोक्षवित्' बंधन और मोक्ष का जो ज्ञाता है उसे पंडित कहते हैं। जो आदमी अपने को पंडित मानता हो और उसे अपने हानि और लाभ का पता न हो वह आदमी हास्यास्पद होता है।

राजा पुरुरवा कह रहा है कि मुझे अपने हानि-लाभ का पता नहीं है फिर भी मैं अपने को पंडित मानता हूँ। अपने पतन के खास कारण पर उसका कितना निष्पक्ष

चिंतन होता है! सत्य के जिज्ञासु को निष्पक्ष होना बहुत जरूरी है।

सत्य के पास हम स्वयं जाकर बैठने का प्रयास करें। सत्य सागर के समान है। जैसे सारी नदियां जाकर समुद्र में मिल जाती हैं उसी प्रकार सारे सम्प्रदाय सत्य में जाकर मिल जाते हैं। इसलिए सत्य का अनुसंधान करने वाले जिज्ञासु को निष्पक्ष होना चाहिए। संत सम्राट सद्गुरु कबीर साहेब ने कहा है—

*पछापछी के कारने, सब जग रहा भुलान।*

*निर्पछ होय के हरि भजै, सोइ संत सुजान॥*

चक्रवर्ती राजा पुरुरवा कितना निष्पक्ष चिंतन करता है! वह कहता है कि जैसे मार्ग में रस्सी पड़ी हो और उसको देखकर कोई व्यक्ति सर्प की कल्पना कर ले, भयभीत होकर दौड़े और गिर पड़े जिससे उसको चोट लग जाये तो उसमें रस्सी का क्या दोष है? जिस व्यक्ति ने रस्सी में सर्प की कल्पना किया, दौड़ा, गिर गया, जिससे उसे चोट लगी, उस व्यक्ति का दोष है। इसी प्रकार राजा ने कहा—'यो यदअजितेन्द्रियः' ये जो उर्वसियां हैं इनका कोई दोष नहीं है, किन्तु दोष तो मेरा है कि मुझमें अजितेन्द्रिय दोष है। इसी दोष के कारण मेरा इतना पतन हुआ है।

संसार के जितने नर-नारी हैं वे चाहे जिस परम्परा के माननेवाले हों, चाहे जिस देश के रहनेवाले हों, सभी व्यक्ति अपने हृदय पर हाथ रखकर सोचें तो उनको यह ज्ञात हो जायेगा कि सबके पतन का कारण अजितेन्द्रिय दोष ही है। इस अजितेन्द्रिय दोष के कारण मनुष्य का पतन हो जाता है। जैसे हाथी के पैर में सबके पैर समा जाते हैं ठीक वैसे जीवन में अजितेन्द्रिय दोष इतना बड़ा दोष है कि उसमें सारे दोष समाहित हो जाते हैं। यही पतन का खास कारण है।

कुछ लोग ताश खेलते हैं। ताश में बावन पत्ते होते हैं। तीन फोटो उसमें आदमी के होते हैं। एक गुलाम



का, एक बेगम का और एक बादशाह का। लोग खेले तो बहुत होंगे परन्तु कभी इसके राज को समझने का प्रयास न किये होंगे। जो बेगम से जीत जाता है वह होता है बादशाह और जो बेगम से हार जाता है वह होता है गुलाम।

ताश में बेगम कौन है, इसे हर आदमी जानता है। वहां बेगम स्त्री का फोटो है और यहां हमारे शरीर में बेगम इन्द्रियां हैं। जो इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर लेता है वह बादशाह हो जाता है। उसका जीवन स्वतंत्र हो जाता है और जो इन्द्रियों से निगृहीत हो जाता है उसका जीवन गुलाम हो जाता है।

आज आदमी धार्मिक दिखने का तो बहुत प्रयास करता है किन्तु धार्मिक होने का प्रयास नहीं करता है। यह उसकी बहुत बड़ी भूल है। आदमी समझता है कि धर्म तो मनोरंजन का साधन है। लेकिन धर्म मनोरंजन का साधन नहीं है बल्कि धर्म निर्विकार जीवन जीने का साधन है। धर्म जीवन में उतरना चाहिए।

धर्म जब जीवन में उतर जाता है तब हमारा मन, वाणी और कर्म पवित्र हो जाते हैं तथा आदमी अपने आप में संतुष्ट हो जाता है, शांत हो जाता है एवं उसका जीवन सफल हो जाता है। इसलिए धर्म जीवन में धारण करने की चीज है किन्तु आज आदमी धर्म के नाम पर न मालूम क्या-क्या कर रहा है?

धर्म है पवित्र आचरण, जिसके लिए हमारे पूर्वजों ने कहा—‘आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः।’ आचरणहीन व्यक्ति को वेद भी पवित्र नहीं कर सकते।

आचरणहीन होने के कारण ही आज तमाम लोग जेल में बन्द हैं। चाहे वे मंत्रों का जाप करनेवाले हों, चाहे हवन करनेवाले हों, चाहे कर्मकाण्ड करनेवाले क्यों न हों, अगर उनका चाल-चलन खराब है तो सरकार उनको पकड़कर जेल में बन्द कर देती है। इसलिए धर्म का स्वस्थ स्वरूप है मानवता, इंसानियत और सदाचार। इसका पालन करें।

आप अपनी मान्यता और अपने विश्वास के अनुसार नाम-जप करें, हवन करें, माला फेरें, साथ-साथ अपने माता-पिता और गुरुजनों का आदर करना सीखें। अपने

मन, वाणी और कर्मों को निर्मल बनाना सीखें। माला इसीलिए आपको दिया गया है कि आप किसी नाम का जप करके अपने मन को पवित्र बनायें, मन को एक जगह लगायें। मन को एकाग्र करने का वह साधन है। आज उस साधन का सही उपयोग आदमी नहीं कर रहा है। इसीलिए साहेब को कहना पड़ा—

*माला तो कर में फिरे, जीभ फिरे मुख मांहि।*

*मनुवां तो चहुं दिशि फिरे, यह तो सुमिरन नाहिं॥*

मन का निग्रह करना जरूरी है। नाम जप आदि मन को रोकने का एक प्रारम्भिक साधन बताया गया था किन्तु आज आदमी उसका ठीक से उपयोग नहीं करता है। इनमें व्यक्ति का दोष है, साधन का कोई दोष नहीं है। इसलिए धर्म का जो स्वस्थ स्वरूप है उसको हम अच्छी तरह से समझने का प्रयास करें। धर्म है स्व का अनुसंधान करना, स्व की खोज करना, स्वरूपस्थ होना और मानवता को धारण करना।

इस शरीर के अन्दर एक ऐसी सत्ता है जो ‘मैं’ के रूप में विराजमान है। वह सत्ता जब तक रहती है तब तक जीवन रहता है। वह सत्ता जिस दिन निकल जाती है आदमी का जीवन पूरा हो जाता है। उसकी खोज करना, अनुसंधान करना, उसमें स्थित होना यही धर्म का स्वरूप है और इसमें कभी कोई विवाद नहीं होता है। धर्म निर्विवाद चीज है।

आप सदाचार का पालन करें। आप मन, वाणी और कर्म को निर्मल बनायें। इसमें किसी भी सम्प्रदाय का कोई भी विवाद नहीं है। इसलिए धर्म निर्विवाद चीज है, सार्वभौम चीज है। आप आत्मानुसंधान करके आत्मा में स्थित हों यही परम धर्म है।

प्रबुद्ध वर्ग के कुछ बन्धु कहते हैं कि विज्ञान धर्म का खण्डन कर रहा है लेकिन विज्ञान धर्म का खण्डन नहीं कर रहा है। धर्म के नाम पर सम्प्रदाय जगत के लोग जो अंधविश्वास का प्रसारण कर रहे हैं उसी का खण्डन विज्ञान कर रहा है। धर्म का कभी कोई खण्डन नहीं कर सकता है।

आग का धर्म है उष्णता प्रदान करना, प्रकाश प्रदान करना तो क्या कोई वैज्ञानिक या कोई व्यक्ति यह कह

सकता है कि आग उष्ण नहीं होती है? आग अगर हिमालय में भी होगी तो गरम होगी। इसी प्रकार धर्म है मानवता, सदाचार और उसका क्या कोई खण्डन कर सकता है। धर्म के नाम पर जो अंधविश्वास प्रसारित किया जा रहा है उसका खण्डन आदमी कर सकता है। धर्म शाश्वत है और हर आदमी के लिए आवश्यक है।

विज्ञान ने पृथ्वी पर दौड़ना सिखलाया है, जल में तैरना सिखलाया है, आकाश में उड़ना सिखलाया है। किन्तु जीवन जीने की कला न सिखा पाने के कारण विज्ञान वरदान नहीं सिद्ध हो रहा है।

आज आदमी आदमी को ही मार रहा है। आदमी आदमी को ही धोखा दे रहा है। आदमी आदमी के साथ गलत व्यवहार कर रहा है। जीने की कला न जानने के कारण आज आदमी का जीवन अभिशाप हो रहा है। आज के युग में धर्म की और बहुत बड़ी उपयोगिता है कि आदमी ठीक से धर्म को समझे और धर्म का पालन करे जिससे समाज और देश की व्यवस्था सही हो, आदमी सुखमय और शांतिमय जीवन जी सके। इसके लिए आवश्यक है कि धर्म के वास्तविक स्वरूप को हम अच्छी तरह से जानें। धर्म है सदाचार। धर्म है एक दूसरे के साथ सुन्दर व्यवहार। हम एक दूसरे का आदर करना सीखें। सभी सम्प्रदायों के प्रति समभाव रखें।

आज हमारी सरकार बार-बार यह कहती है कि साम्प्रदायिकता का विष समाज में फैलता जा रहा है। यह साम्प्रदायिकता है क्या चीज, साम्प्रदायिकता का मूल कारण क्या है, इस पर लोग चिंतन नहीं करते हैं।

साम्प्रदायिकता के केवल तीन ही कारण हैं। एक, अपने सम्प्रदाय को ईश्वरप्रदत्त मानना, यह मानना कि हमारा सम्प्रदाय ईश्वर के द्वारा संचालित है। दूसरा, हमारा जो मान्य ग्रंथ है यह ईश्वर की वाणी है, स्वतः प्रमाण है और तीसरा, हमारे जो आराध्य देव हैं ये साक्षात् परब्रह्म परमात्मा हैं। इन्हीं तीनों के कारण साम्प्रदायिकता का विष फैलता है।

इस प्रकार की मान्यता जो आदमी बना लेता है वह समझता है कि जो हमारे सम्प्रदाय को नहीं मानेगा उसका कल्याण नहीं होगा, मोक्ष नहीं होगा। मोक्ष तो

केवल हमारे सम्प्रदाय की चीज है, हमारी परम्परा की चीज है। इस प्रकार वह मान लेता है और दूसरे आदमी से जबरदस्ती इसे मनवाने का प्रयास करता है। बस, यही साम्प्रदायिकता है।

इन तीनों दैवीय मान्यताओं का संत सम्राट सद्गुरु कबीर साहेब ने बड़ी दृढ़ता से मानवीकरण किया है। उन्होंने इन तीनों का सुन्दर समन्वय करके, जो शाश्वत सत्य है, उसे बताया है। उन्होंने कहा कि दुनिया में जितने सम्प्रदाय हैं सब मानवकृत हैं। जितने ग्रंथ हैं, सभी मानव-मस्तिष्क की उपज हैं। सभी ग्रंथों के रचयिता इंसान हैं और सभी आराध्य देव इंसान हैं।

अगर हर आदमी इस प्रकार से सत्य और तथ्य का बोध प्राप्त कर ले तो साम्प्रदायिकता समाप्त हो सकती है। हर आदमी का कर्तव्य है कि अपने सम्प्रदाय में रहे, अपने सम्प्रदाय के नियमों का पालन करे और साथ-साथ दूसरे के सम्प्रदायों का आदर करे। जो हमारे ग्रंथ हों, उनका पाठ करें, उनका अध्ययन करें। साथ-साथ अगर पढ़ सकते हों तो 'कुरान शरीफ' भी पढ़ें, 'बाइबिल' भी पढ़ें, 'गुरुग्रंथ साहेब' को भी पढ़ें और 'त्रिपिटक' भी पढ़ें, 'बीजक' पढ़ें तथा और भी जो अन्य ग्रंथ हैं उनको पढ़ें। हम सभी ग्रंथों का समान आदर करें और निष्पक्ष होकर अनुसंधान करें। ग्रंथों में वर्णित उच्च आदर्शों को जीवन में उतारें।

इसी प्रकार सभी महापुरुषों का, सभी सम्प्रदायों का, सभी शास्त्रों का समान आदर हो तो साम्प्रदायिकता विदा हो जायेगी।

हर आदमी किसी-न-किसी सम्प्रदाय में रहता है। सम्प्रदाय में रहना गलत नहीं है किन्तु उसके अन्दर जब साम्प्रदायिकता आ जाती है तब दूसरे सम्प्रदायवाले को वह हेय दृष्टि से देखने लगता है, उसके साथ वह अभद्र व्यवहार करने लग जाता है। बस वहीं द्वेष की भावना फैल जाती है।

विचारों में उदारता की बड़ी आवश्यकता है। हमारे विचार संकीर्ण नहीं होने चाहिए। हमारी भारतीय परम्परा में पूर्वजों ने कितना उदार विचार रखा। उन्होंने कहा 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' अर्थात् सभी सुखी हों, किसी के

जीवन में दुख न हो। हमें भी अपने पूर्वजों की भांति उदार होना चाहिए। सबके हित की कामना करना चाहिए और अपना आचरण पवित्र बनाना चाहिए।

आदमी का आचरण तभी पवित्र होता है जब उसकी मानसिक स्थिति निर्मल होती है। इसीलिए महाराज राम ने कहा 'निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा ॥' बहुत प्रसिद्ध लोकोक्ति है कि 'मन चंगा तो कठौती में गंगा'। कहावत तो करीब-करीब हर प्रान्त के लोगों को याद है परन्तु बहुत कम लोग होंगे जिनका मन चंगा रहता है।

खराबी जब मन में पैदा होती है तब वाणी में आ जाती है और फिर आचरण में आ जाती है। अगर आदमी का मन ठीक रहे तो उसकी वाणी ठीक होगी और उसका आचरण भी ठीक होगा। खराबी के मूल में मन है इसलिए मन को ठीक करना चाहिए।

आदमी बहुत चालाक है। वह मन को ठीक करने का प्रयास नहीं करता है बल्कि वह चीजों को ठीक करने का प्रयास करता है। जब तक आदमी का मन ठीक न होगा, तब तक उसका जीवन ठीक न होगा।

आदमी के दिमाग में जब तक अज्ञान है तब तक आदमी का आचरण नहीं बदल सकता है, चाहे आदमी लाख पूजा करे, हवन करे, माला फेरे, नमाज पढ़े, हज करे, प्रार्थना करे, कुछ भी करे। आदमी चाहे जो कुछ करे, जब तक उसकी मानसिक स्थिति सही नहीं होगी तब तक उसके जीवन की स्थिति सही नहीं होगी। इसीलिए आज हमें सद्गुरु कबीर साहेब की याद आती है। उन्होंने कहा—

*एक साधे सब साधिया, सब साधे एक जाय।*

*जैसा सींचे मूल को, फूले फले अघाय ॥ (बीजक)*

अगर वृक्ष के मूल में पानी देते हैं तो पूरा वृक्ष हरा-भरा रहता है। कोई आदमी वृक्ष के एक-एक फूल में, एक-एक पत्ती में पानी नहीं देता है। वह मूल में पानी देता है जिससे पूरा वृक्ष हरा-भरा रहता है। इसी प्रकार एक मन को साध लेने पर पूरा जीवन अपने आप सध जाता है। इसलिए मन को ठीक करना चाहिए।

आज आदमी शरीर को ठीक करने का बहुत प्रयास करता है, चीजों को ठीक करने का प्रयास करता है किन्तु अपने मन को ठीक करने का प्रयास नहीं करता है। जिस दिन आदमी का मन ठीक हो जायेगा उस दिन आदमी की भाषा ठीक हो जायेगी, जीवन ठीक हो जायेगा।

मैं कह रहा था कि जीवन में धर्म की बहुत बड़ी आवश्यकता है। धर्म हमें जीने की कला सिखाता है।

*धर्म न हिन्दू बौद्ध है, धर्म न मुसलिम जैन।*

*धर्म चित्त की शुद्धता, धर्म शांति सुख चैन ॥*

लोगों ने धर्म के पहले हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, बौद्ध आदि अनेक विशेषण लगा दिया है और धर्म को एक संकुचित दायरे में लाकर बन्द कर दिया है। धर्म विशेषण रहित है। 'धर्म' शब्द अपने आप में पूर्ण है। उसे किसी विशेषण की जरूरत नहीं है। जैसे आग केवल आग है। सत्य केवल सत्य है उसी प्रकार धर्म केवल धर्म है। इसलिए हर आदमी को सच्चे अर्थों में धर्मावलम्बी होना चाहिए। धर्म में हमारी निष्ठा होनी चाहिए।

जिस आदमी की जैसी श्रद्धा होती है उसी प्रकार की उसकी प्रवृत्ति होती है। धर्म की रक्षा के लिए हमारे देश के कितनी सती-साध्वी देवियों ने अपने जीवन को आग को समर्पित कर दिया। हमारे राष्ट्र के कितने नेता हैं, राष्ट्रभक्त हैं जिन्होंने अपने जीवन की कुर्बानी दे दी किन्तु धर्म का परित्याग नहीं किया।

धर्म जीवन में धारण करने की चीज है। धर्म जीने की कला सिखाता है, धर्म मानवता है। धर्म स्वस्वरूप का अनुसंधान है। धर्म स्वस्वरूप में स्थिति है।

आज के वैज्ञानिक युग में लोग तरह-तरह के जो भ्रम फैला रहे हैं उनसे हमें ऊपर उठना चाहिए और हमारी आस्था धर्म में होनी चाहिए। गोस्वामी जी लिखते हैं 'धर्म न दूसर सत्य समाना, आगम निगम पुराण बखाना ॥ परहित सरिस धर्म नहिं भाई, परपीड़ा सम नहिं अधमाई ॥ परम धर्म श्रुति विदित अहिंसा।' न वे माला का नाम लेते हैं, न हवन का नाम लेते हैं, न पूजा



का नाम लेते हैं। गोस्वामी जी ऐसी चीजों को धर्म बताते हैं जो सार्वभौम हैं।

दुनिया का कोई सम्प्रदायवादी यह नहीं कह सकता है कि हमें सत्य की, इंसानियत की, परोपकार की जरूरत नहीं है। सत्य की, इंसानियत की और अपने प्रति उपकार की सबको जरूरत है और यही धर्म है। इसलिए धर्म सार्वभौम तत्त्व है। धर्म देश-काल निरपेक्ष है, शाश्वत और सनातन है। इसलिए कभी भी कोई मनीषी धर्म का खण्डन नहीं कर सकता है।

धर्म के नाम पर जो अंधविश्वास है, उसका खण्डन कोई करे, तो कर सकता है किन्तु धर्म का खण्डन नहीं हो सकता है। धर्म शाश्वत है। धर्म के प्रति हर आदमी के मन में अगाध श्रद्धा होनी चाहिए। जब आदमी के मन में धर्म के प्रति श्रद्धा होती है तब उस आदमी का जीवन पवित्र होता है, महान होता है। तब वह आदमी ऐसा जीवन जीता है जो समाज के लिए प्रेरणास्रोत और आदर्श होता है—

*सुधरे व्यक्ति समाज व्यक्ति से, उसका असर राष्ट्र पर हो।  
जाग उठे जन जन का मानस, ऐसी जागृति घर घर हो ॥*

मनुष्य अपने आचरण को पवित्र बनाये, दूसरे के साथ मानवीयता का व्यवहार करे, सच्चाई के साथ जीवन जीये, ऐसी जागृति की आज घर-घर में आवश्यकता है, ऐसी वैचारिक क्रांति की आज आवश्यकता है।

सूर्य बहुत विशाल है किन्तु उसके ऊपर जब बादल आ जाता है तब ऐसा आवरण छा जाता है कि सूर्य की किरण धरती पर नहीं आ पाती है। इसी प्रकार धर्म के नाम पर तरह-तरह का जो आवरण छाया हुआ है उसको हटाने के लिए आज सत्यज्ञान की आवश्यकता है, जिससे धर्म के स्वस्थ स्वरूप को हम अच्छी तरह से समझ सकें। इसकी आवश्यकता सदा से रही है, आज है और आगे भी रहेगी।

इस प्रकार प्रत्येक नर और नारी का यह पावन कर्तव्य है कि धर्म में आस्था रखें, धर्म को धारण कर अपने जीवन को निर्मल बनायें, सार्थक बनायें। □

## श्री पलटू साहेब के उपदेश

जैसे काठ में अगिन है, फूल में है ज्यों बास।  
हरिजन में हरि रहत हैं, ऐसे पलटू दास ॥  
दुष्ट मित्र सब एक हैं, ज्यों कंचन त्यों काँच।  
पलटू ऐसे दास को, सुपनै लगे न आँच ॥  
ना जीने की खुशी है, पलटू मुए न सोच।  
ना काहू से दुष्टता, ना काहू से रोच ॥  
की तो हरि चरचा महँ, की तौ रहै इकन्त।  
ऐसी रहनी जो रहे, पलटू सोई सन्त ॥  
संत संत सब बड़े हैं, पलटू कोऊ न छोट।  
आतम-दरसी मिहीं हैं, और चाऊर सब छोट ॥  
पलटू नर तन पाइकै, मूरख भजै न राम।  
कोऊ न संग जायगा, सुत दारा धन दाम ॥  
बड़े बड़ाई में भुले, छोटे हैं सिरदार।  
पलटू मीठा कूप जल, समुंद पड़ा है खार ॥  
मुँह मीठो भीतर कपट, तहाँ न मेरो बास।  
काहू से दिल ना मिलै, तो पलटू फिरै उदास ॥  
सतगुरु बपुरा क्या करै, चेला करै न होस।  
पलटू भीजै मोम ना, जल को दीजै दोस ॥  
मरने वाला मरि गया, रोवै सो मरि जाय।  
समुझावै सो भी मरै, पलटू को पछिताय ॥  
सुख में सेवा गुरु की, करते हैं सब कोय।  
पलटू सेवै बिपति में, गुरु भगता है सोय ॥  
हिन्दू पूजै देवखरा, मुसलमान महजीद।  
पलटू पूजै बोलता, जो खाय दीद बरदीद ॥  
पलटू गुनना छोड़ि दे, चहै जो आतम सुक्ख।  
संसय सोइ संसार है, जरा मरन को दुक्ख ॥  
जल पषान के पूजते, सरा न एकौ काम।  
पलटू तन करु देहरा, मन करु सालिगराम ॥  
पलटू हमसे लडन को, आवै सब संसार।  
वे बोलैं में चुप रहूँ, सहजै जावैं हार ॥

# व्यवहार वीथी

## विनम्रता और सेवापरायणता

कोई व्यक्ति अपने ही घर-परिवार-समाज में अपने ही लोगों, संगी-साथियों के बीच रहते हुए अपने ही लोगों से उपेक्षित क्यों हो जाता है, क्यों लोग उसकी बात सुनना और उसके पास बैठना पसंद नहीं करते? अनेक प्रकार के पूजा-पाठ, नाम-जप, सत्संग-भजन आदि करते हुए भी मन अशांत क्यों बना रहता है, आध्यात्मिक साधना में उन्नति क्यों नहीं होती? उत्तर है—अहंकार और अधिकार लालसा के कारण। यदि आदमी अहंकार छोड़कर विनम्र और सरल बन जाये तथा अधिकार लालसा और अधिकार के पीछे दौड़ना छोड़कर सेवा एवं कर्तव्य-परायण बन जाये तो वह सबका प्रिय बन जायेगा, सब उस पर ध्यान देना शुरू कर देंगे, साथ ही उसका अपना मन हर समय शांत-संतुष्ट बना रहेगा और वह साधना के सोपान पर ऊपर चढ़ता चला जायेगा।

सद्गुरु कबीर ने कितना सुंदर कहा है—“अजहूँ तेरा सब मिटै, जो मन माने हार।” तथा—“या आपा को डारि दे, दया करे सब कोय।” अर्थात् यदि मन हार मान जाये, अहंकार छोड़कर विनम्र बन जाये, झुक जाये तो तेरे बाहर-भीतर के वैर-विरोध, कलह-क्लेश, अशांति, भय आदि सारे उपद्रव मिट जायेंगे और सब लोग तुम पर दया करने लग जायेंगे, तुम्हारे मित्र, सहयोगी, हितैषी बन जायेंगे। सारे उपद्रव की जड़ अहंकार ही है। अहंकारी आदमी को पदे-पदे विपत्ति का सामना करना पड़ता है। अहंकार हो और जीवन में विपत्ति न आये यह हो नहीं सकता। इसीलिए तो सद्गुरु कबीर कहते हैं—जहाँ आपा तहाँ आपदा।

अहंकार ऐसी आग है जिसमें आदमी अंदर-अंदर स्वयं ही जलता रहता है। उसे न तो दिन में चैन मिलता है न रात में। उसे हर समय यही महसूस होता रहता है

कि लोग मेरी कीमत नहीं समझ रहे हैं और हर व्यक्ति मेरा अपमान करने पर तुला हुआ है, कोई मेरी बात सुनने और मानने को तैयार नहीं है। हर व्यक्ति उसे अपना शत्रु जान पड़ता है। परंतु यदि वह अहंकार छोड़कर विनम्र हो जाये, दूसरों को झुकाने की भावना-क्रिया का त्याग कर स्वयं झुक जाये तो उसका जलता हुआ मन तुरंत शीतल-शांत हो जायेगा और हर व्यक्ति उसे अपना मित्र जान पड़ने लगेगा। सद्गुरु कबीर कहते हैं—“जग में बैरी कोई नहीं, जो मन शीतल होय।”

जैसे ताड़ के पेड़ में नीचे से ऊपर तक कांटे-ही-कांटे रहते हैं वैसे ही अहंकारी आदमी के जीवन में कांटे-ही-कांटे शेष रह जाते हैं, जो दूसरों को तो कम उसी को ही चुभते रहते हैं। उसके अपने ही लोग उससे दूर हटने लग जाते हैं या हट जाते हैं। वह अपने ही लोगों के बीच पराया-जैसा बनकर रह जाता है। अहंकार आदमी की विवेक-बुद्धि पर ऐसा परदा डाल देता है कि वह तथ्य को समझने ही नहीं देता। यदि आदमी अहंकार छोड़कर विनम्र-सरल बन जाये तो वह सब का प्यारा और प्रेम-पात्र बन जाये। याद रखें, लोगों का प्रेम-पात्र बनने के लिए और शांति-सुख से जीने के लिए दूसरों को झुकाने की नहीं, किन्तु स्वयं झुकने की आवश्यकता होती है और झुकने के लिए पहली शर्त है अहंकार का त्याग। झुकने में तौहीनी नहीं है, तौहीनी तो अकड़पन में होती है। झुकना आदमी के बड़प्पन को प्रदर्शित करता है। झुकने से कीमत घटती नहीं है, किन्तु बढ़ जाती है। सद्गुरु कबीर कहते हैं—“घालि तराजू तौलिये, नवै सो भारी होय।” तराजू का जो पलड़ा झुका हुआ होता है उसी की कीमत ज्यादा होती है, उठे हुए की नहीं। सब झुके पलड़े को पसंद करते हैं, ऊपर उठे पलड़े को नहीं। इसी प्रकार विनम्र-सरल व्यक्ति सबका प्रिय होता है, अहंकारी नहीं।

अहंकार आदमी की सारी योग्यताओं को मिट्टी में मिलाकर रख देता है। अंत में अहंकारी व्यक्ति के पास पश्चाताप, दुख-दर्द और अकेलापन के सिवाय और कुछ नहीं रह जाता। दुनिया सदैव विनम्र-सरल व्यक्ति की

पूजा करती है, अहंकारी की नहीं। अहंकार परस्पर के व्यवहार को तो बिगाड़ कर रख ही देता है, मन की शांति को भी हर लेता है, नष्ट कर देता है। कोई भी व्यक्ति चाहे कितना ही त्याग-तप, साधना कर ले जब तक मन में अहंकार रहेगा, वह कभी शांति पा नहीं सकता। उसका सारा त्याग-तप दिखावा बनकर रह जायेगा। किन्तु जैसे ही वह अहंकार का त्याग कर झुकने को तैयार होता है, तत्काल उसकी साधना पूरी हो जाती है और उसका मन शांति-सागर में निमज्जन करने लगता है। निम्न उदाहरण से इस बात को अच्छी तरह से समझा जा सकता है—

कहा जाता है ऋषभदेव के 100 पुत्र थे। संन्यास लेने से जाने के पूर्व उन्होंने अपने राज्य को सभी 100 पुत्रों को बराबर बांट दिया और विरक्त होकर तप करने चले गये। उनके सभी पुत्र अपना-अपना स्वतंत्र राज्य करने लगे। कुछ दिनों के बाद बड़े पुत्र भरत के मन में चक्रवर्ती सम्राट बनने की इच्छा जागृत हुई और उन्होंने अपने सभी 99 भाइयों के पास संदेश भेजा कि अपना-अपना राज्य मुझे सौंपकर मेरे अधीन होकर राज्य करो, या फिर युद्ध के लिए तैयार रहो। संदेश पाकर उनके 98 छोटे भाइयों ने कहा कि न तो हम युद्ध करेंगे और न ही आपके अधीन होकर राज्य करेंगे। वे सभी अपना-अपना राज्य भरत को सौंपकर अपने पिता ऋषभदेव के पास जाकर विरक्त होकर तप करने लगे। भरत का संदेश पाकर दूसरे नंबर का भाई बाहुबली ने कहा— भैया भरत चक्रवर्ती सम्राट बनना चाहते हैं तो यदि वे स्वयं आकर मुझसे मेरा राज्य मांगें तो मैं खुशी से अपना राज्य उन्हें दे दूंगा, परंतु ऐसा न कर यदि वे युद्ध की चुनौती देते हैं तो मैं यह चुनौती स्वीकार करता हूँ।

बाहुबली का संदेश पाकर दोनों तरफ से युद्ध की तैयारी होने लगी और एक दिन दोनों पक्ष की सेना युद्ध के मैदान में आकर आमने-सामने खड़ी हो गयी। दोनों पक्ष के समझदारों ने कहा कि यह लड़ाई आप दोनों भाइयों की आपसी लड़ाई है, फिर इसमें व्यर्थ का रक्तपात क्यों हो। आप दोनों भाई आपस में द्वन्द्व युद्ध

कर लें। जो हारे वह अपना राज्य जीतने वाले को सौंप दे। परन्तु, ध्यान यह रखना है कि इस द्वन्द्व युद्ध में किसी प्रकार के अन्याय-अनीति का सहारा न लिया जाये। द्वन्द्व युद्ध में अपनी हार होते देख जब भरत ने अनीति का सहारा लिया तब बाहुबली को राज-पाट सबसे ग्लानि हो गयी और वे सब कुछ त्यागकर विरक्त हो गये।

विरक्त होने के पश्चात बाहुबली ने अपने पिता ऋषभदेव के पास जाकर उनके सान्निध्य में रहकर तप करने को सोचा, तब उनके मन में अहंकार जगा कि मुझसे पहले मेरे 98 छोटे भाई पिताजी के पास जाकर तप कर रहे हैं और साधु-मार्ग की मर्यादा के अनुसार उन्हें बड़ा मानकर मुझे उन सबको प्रणाम करना पड़ेगा, उनके पीछे बैठना पड़ेगा। मैं उनसे बड़ा होकर उन्हें प्रणाम कैसे कर सकता हूँ। साधना-तप ही करना है तो कहीं भी रहकर किया जा सकता है, ऐसा सोचकर वे ऋषभदेव जी के पास न जाकर अकेले रहकर तप-साधना करने लगे, परन्तु लंबे समय तक कठोर तप-साधना करने के बाद भी मन में अहंकार बने रहने के कारण उनका मन शांत नहीं हो पा रहा था। तब ऋषभदेव जी के कहने पर बाहुबली की दो बहनें उनके पास जाकर उनके तप-साधना की प्रशंसा कर कहने लगी—“भैया! हाथी पर से नीचे उतरो। हाथी पर सवार होने से शांति नहीं मिलेगी।” इन बातों को सुनकर बाहुबली को झटका लगा कि मैंने कठोर साधना तो किया, परंतु अभी मेरे मन से अहंकार मिटा नहीं है। अरे, यहां कौन छोटा और कौन बड़ा! चलो, पिताजी के पास ही चलता हूँ, और अपने भाइयों को बड़ा मानकर उनके साथ रहकर ही तप-साधना करूंगा। ऐसा सोच अहंकार त्यागकर जैसे ही वे ऋषभदेव जी के पास जाने के लिए आगे कदम बढ़ाये वैसे ही उन्हें शांति मिल गयी। उनका मन शांत हो गया और उनकी साधना पूरी हो गयी।

उक्त उदाहरण का सार इतना ही है कि व्यवहार की मधुरता, समता, एकता और मन की शांति-प्रसन्नता के

रास्ते में अहंकार ही सबसे बड़ी बाधा है। अहंकार का अर्थ ही है स्वयं को दूसरों से ज्यादा योग्य एवं बड़ा मानना। और जहां स्वयं को दूसरों से ज्यादा योग्य और बड़ा मानने का भाव होगा वहां अधिकार-लालसा अवश्य होगी। जहां अधिकार-लालसा होगी, सब कुछ को अपनी मुट्ठी में रखने का भाव होगा वहां छल-कपट का व्यवहार भी अवश्य होगा। फलतः आदमी न स्वयं शांत रहेगा और न दूसरों को शांति से रहने देगा।

महाभारत युद्ध के कई कारणों में से एक प्रमुख कारण—अहंकार और अधिकार लालसा है। शर्त के अनुसार बारह वर्ष वनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास पूरा करने के पश्चात पाण्डव वापस आये और अपना राज्य वापस मांगे तब दुर्योधन ने कहा था—बिना युद्ध के सूई की नोक बराबर जमीन पाण्डवों को नहीं दूंगा। दुर्योधन का यह कथन उसके अहंकार और अधिकार लालसा को ही प्रदर्शित करता है। न दुर्योधन अधिकार लालसा छोड़ पाये न पाण्डव। फलतः महाभारत युद्ध में कौरव-वंश का तो समूल विनाश हुआ ही, पाण्डव भी जिंदगी भर मानसिक अनुताप में जलते रहे।

अहंकार एवं अधिकार लालसा में न स्व-हित का ख्याल रह पाता है और न पर-हित का। उसमें यह भी नहीं देखा जाता कि अधिकतम लोगों का हित किसमें है। वहां तो रह जाता है सिर्फ अपने को दूसरों से बड़ा मनवाने और सब कुछ को अपने अधिकार में रखने का भाव। अहंकार और अधिकार-लालसा से ग्रस्त आदमी सेवा करना जानता ही नहीं, वह सेवा करना चाहता भी नहीं है। वह बस दूसरों से सेवा करवाना जानता है। वह यह भूल जाता है कि कर्तव्यनिष्ठ और सेवापरायण व्यक्ति स्वयमेव ऊपर उठता, आगे बढ़ता चला जाता है। उसे स्वयं को दूसरों से बड़ा मनवाना नहीं पड़ता, किन्तु दूसरे लोग स्वतः उसे बड़ा मानने लगते हैं और अधिकार उसके पीछे स्वतः चला आता है, जबकि वह अधिकार-लालसा रखता ही नहीं।

अहंकार और अधिकार-लालसा से ग्रस्त व्यक्ति दूसरों की प्रशंसा करना तो जानता ही नहीं, वह दूसरों

की प्रशंसा-बड़ाई सहन भी नहीं कर पाता। वह तो केवल अपनी ही प्रशंसा-बड़ाई चाहता है। वह यह भूल जाता है कि प्रशंसा चाहने से नहीं मिलती, उसके लिए तो कर्मतत्पर एवं सेवापरायण होना पड़ता है। विनम्र और सेवापरायण-कर्मतत्पर व्यक्ति को कभी यह चिंता नहीं होती कि लोग मेरे बारे में क्या धारणा रखते हैं और क्या कहते हैं। वह तो सेवा और कर्म करता चला जाता है। यह सदैव ध्यान रखना चाहिए कि किसी भी दिशा में आगे बढ़ने, सफलता पाने का एकमात्र रास्ता है विनम्रतापूर्वक कर्मतत्परता और सेवापरायणता।

सार यह है कि यदि सुख-शांति पूर्वक जीवन जीना चाहते हैं तो अहंकार और अधिकार-लालसा छोड़कर विनम्र और कर्मतत्पर-सेवापरायण बनें। बड़ा बनने और प्रशंसा पाने की कामना का पूर्ण त्याग कर दें। याद रखें, टीका मस्तक पर लगाया जाता है और मुकुट सिर पर पहना जाता है, लेकिन किसी का स्नेह और आशीर्वाद पाने के लिए अपना सिर पैरों पर झुकाना पड़ता है। किसी का स्नेहपूर्ण वरदहस्त अपने सिर पर रखा हुआ पाकर मन को कितना सुकून और आश्वासन मिलता है, लेकिन इसके लिए झुकना होता है। इसलिए छोटा और विनम्र बनकर रहें। किसी ने कितना सुंदर कहा है—

*मिट्टी में ही होती है पकड़ मजबूत पैरों की,  
संगमरमर पर अक्सर मैंने लोगों को फिसलते देखा है।  
छोटा बनकर रहोगे तो मिलेगी हर बड़ी रहमत,  
बड़ा होने पर तो मां भी गोद से उतार देती है।*

मनुष्य न उम्र से बड़ा होता है, न जाति से, न रूप से, न बल से, न धन से, न विद्या से, न पद से, न लेखक-प्रवक्ता होने से, किन्तु मनुष्य बड़ा होता है, सद्गुण और सदाचार से और जो सद्गुणी एवं सदाचारी होगा वह विनम्र और सेवापरायण अवश्य होगा। इसलिए अहंकार और अधिकार-लालसा छोड़कर सद्गुणी, सदाचारी, विनम्र और सेवापरायण बनें। फिर तो—“आप सुखी दूसर सुखी।” सर्वत्र मंगल ही मंगल—बाहर भी, भीतर भी।

—धर्मेन्द्र दास

# पारिवारिक समृद्धि के सूत्र

लेखक—श्री कृष्णचन्द्र टावाणी

परिवार को सुखी, समृद्ध व संपन्न तो सभी बनाना चाहते हैं। किन्तु इसकी प्राप्ति के प्रयत्न बहुत ही कम व्यक्ति करते हैं। सेवा, समर्पण, समन्वय, संयम, सहनशीलता, संतोष आदि को अपनाकर ही इन्हें प्राप्त किया जा सकता है। अतः परिवार को आदर्श तथा संस्कारित बनाने के लिए दैनिक व्यवहार में निम्न सूत्रों को अपनाने का संकल्प कीजिए।

**सर्वदेवमय माता-पिता**—व्यास मुनि कहते हैं—पिता ही धर्म है, पिता ही स्वर्ग है व पिता ही परम तप है। पिता के प्रसन्न होने से सारे देवता प्रसन्न होते हैं। जिस पुत्र की सेवा और गुणों से माता-पिता प्रसन्न होते हैं, वह गंगा-स्नान का फल पाता है। माता सर्वतीर्थमयी और पिता सर्वदेवमय है। कहा गया है कि ऐसे माता-पिता की जो पुत्र प्रदक्षिणा करता है, वह पृथ्वी भर की प्रदक्षिणा कर लेता है। माता-पिता को प्रणाम करते समय जिसके दोनों हाथ, मस्तक व घुटने पृथ्वी पर टिकते हैं, वह अक्षय स्वर्ग पाता है। जो मनुष्य कड़ी जुबान से माता-पिता का अपमान करता है वह बहुत काल तक नरक में रहता है। जो पुत्र माता-पिता की सेवा किये बिना ही भोजन करता है, वह मरने पर कृमिकूप नामक नरक में जाता है। माता-पिता की सेवा न करके तीर्थ सेवा, संत सेवा या देव अराधना करने पर भी उसका फल प्राप्त नहीं होता है। अतः माता-पिता ही पूज्य देव हैं। इनका सम्मान एवं सेवा करने में किसी प्रकार की भूल नहीं करे।

**भ्रातृ-प्रेम**—भगवान राम का बंधु प्रेम अलौकिक है। अपने राज्याभिषेक के समय उन्होंने अपने भाई भरत को कहा था—“यह राज्य तुम्हारा है। इसके कर्ता-भोक्ता तुम्हीं हो। मैं तो निमित्त मात्र हूँ, तुम तो मेरे बाह्य प्राण हो, मेरी दूसरी अन्तरात्मा हो। यह जीवन तुम्हारे लिए ही है।” श्रीराम के भ्रातृप्रेम से भी भरत का भ्रातृप्रेम श्रेष्ठ है। जिन्होंने मिला हुआ राज्य भी छोड़

दिया। अपने बड़े भाई की चरण पादुका उन्होंने गद्दी पर पधरा दी और स्वयं तप करते रहे। महात्मा लोग कहते हैं कि श्रीराम की तपश्चर्या से भरत की तपश्चर्या महान है। वन में तप करना सरल है, किन्तु राजमहल में तप करना बहुत कठिन है। घर में बड़ा भाई राम हो सकेगा तो छोटा भाई निश्चय ही भरत या लक्ष्मण हो सकेगा। शुद्ध भावना से अपने भाई के साथ प्रेम करो, तो तुम्हारा छोटा भाई भी वैसी ही शुद्ध भावना से तुम्हारे प्रति प्रेम रखेगा। सबको मान दो। कोई भी अपेक्षा रखे बिना, जहां तक हो सके सबके साथ प्रेम करो। अपेक्षा रखकर किया हुआ प्रेम स्वार्थ है। सबको सम्मान दो, परन्तु प्रेम और सम्मान मांगना कभी नहीं। मनुष्य का जन्म दूसरों को सुखी करने के लिए है। जिसका व्यवहार अतिशय शुद्ध होता है, उसके पास भले ही कुछ भी न हो, तो भी उसको शांति मिलती है। पाप और प्रेम इनको कोई पचा नहीं सकता, यह बाहर निकल कर आते ही हैं। पाप सदैव छिपता नहीं। भगवान राम ने जगत में धर्म का आचरण करके बताया है। अपने जीवन में इनको आदर्श मानकर इनके गुणों का अनुकरण करें।

**स्त्री धर्म**—शास्त्र में लिखा है कि पुत्र बहुत योग्य हो तो एक ही कुल का उद्धार कर सकता है। परन्तु स्त्री योग्य हो और स्वधर्म का बराबर पालन करती हो तो वह पति के साथ पिता के कुल को तार सकती है। स्त्री धर्म अतिशय श्रेष्ठ है। जो स्त्री घर में रहकर गृहस्थ धर्म का पालन करती है, उसमें पवित्र रहने की अनुकूलता रहती है। शास्त्र में लिखा है कि प्रभु की प्राप्ति स्त्री को जल्दी होती है। स्त्री का हृदय स्नेहयुक्त होता है। वह प्रभु प्रेम में जल्दी पिघलती है। उसमें समर्पण की भावना होती है। स्त्री घर के प्रत्येक प्राणी में ईश्वर का भाव रखती है, सबकी सेवा करती है, यह उसकी बड़ी से बड़ी सेवा है। घर के लोग मेरा सम्मान करेंगे, ऐसी थोड़ी भी अपेक्षा नहीं रखती। कितने ही लोग काम तो



खूब करते हैं, परन्तु घर में इनसे सम्मान से न बोला जाये तो हृदय पीड़ित होता है। कोई मनुष्य मेरा सम्मान करे, ऐसी अपेक्षा नहीं रखना चाहिए। कोई भी काम करो सेवा समझकर इष्ट का स्मरण करके करो तो हृदय पीड़ित नहीं होता। मेरे काम की लोग प्रशंसा करें ऐसी अपेक्षा नहीं रखनी चाहिए। तुम अपना कर्तव्य सदैव निर्वाह करो, स्वधर्म का पालन करो।

**मधुर वाणी**—कर्कश वाणी से कलह का जन्म होता है। सब पापों की मूल वाणी है। कोई निंदा करे, द्वेष करे तो प्रतिकार मत करो, उसको याद नहीं रखो, सहन कर लो और भूल जाओ। हृदय में हरि को रखना है, तो विष रखो नहीं। निश्चय करो कि मुझे मधुर बोलना है। किसी का दिल दुखे ऐसा नहीं बोलना है। वाणी मधुर होनी चाहिए, आनंद उपजावे ऐसी होनी चाहिए। शब्द ब्रह्म का स्वरूप है। जो सर्वकाल मधुर बोलता है, उसका कोई शत्रु नहीं होता। जो मधुर है, वही सबको प्यारा लगता है। स्वार्थवश मधुर बोलना यह सच्ची मिठास नहीं है। हृदय में मिठास हो तभी वाणी में मिठास आती है। कुदरत ने हृदय दिया है मिठास भरने के लिए और जीभ दी है मधुर बोलने के लिए। कुछ भी क्यों न हो जाये, कोई अपमान करे या नुकसान हो जाये फिर भी ऊंचे स्वर में कभी बोलना नहीं चाहिए। कर्कश वाणी से ही कलियुग का जन्म हुआ है। शब्द धन है, रत्न है, शब्द ही अस्त्र है, इन्हें संजोकर रखना चाहिए। जो मधुर बोलता है वही सब को प्रिय है। जानते हो श्रीकृष्ण ने हाथ में बांसुरी किसलिए रखी है? बांसुरी अतिशय मधुर बोलती है। बांसुरी सज्जन अथवा दुर्जन सबके साथ मधुर ही बोलती है। बांसुरी का नाद सुनकर हिरण भी दौड़ते हैं और विषधर नाग भी दौड़ते हैं।

**सम्पत्ति बनाम संस्कार**—आवश्यकता सम्पत्ति की उतनी नहीं, जितनी सुसंस्कारिता की है। समन्वय की भावना हमें आपस में स्नेह और सहयोग पूर्वक रहना और जो सामने है उसे मिल बांटकर कैसे खाया जाये सिखाती है। सोचने के लिए विवेक बुद्धि हमें मिली है, पर सोचने की कला से हम अपरिचित हैं। श्रम करने के

लिए उपकरण हमें मिले हैं, पर क्या किया जाये और क्या न किया जाये, इसका ज्ञान कदाचित ही किसी को हो। सम्पत्ति के साथ स्नेहशीलता एवं संस्कारों का समावेश आवश्यक है। संस्कारों के बिना सम्पत्ति व्यर्थ है। सम्पत्ति के अभाव में कितने ही लोग कष्ट पाते हैं, पर उससे अधिक वे लोग दुःखी हैं, जो सम्पत्ति का उपयोग नहीं जानते हैं। सम्पत्तिवानों को दुर्व्यसनों में प्रस्त देखा जाता है। कुकर्मों की भरमार सम्पन्नता के बाहुल्य से ही होती है। इसीलिए सम्पत्ति से अधिक संस्कारों की आवश्यकता है।

**शांति**—हमारे जीवन में सबसे बड़ी उपलब्धि यदि कोई हो सकती है तो वह है शांति मिलना, सुकून मिलना। अगर शांति न मिले तो सारे धन, वैभव और विकास का मिलना व्यर्थ हो जाता है। हमें शांति को सर्वाधिक महत्त्व देना होगा और इसे पाने के लिए भरपूर प्रयास करने होंगे, वरना हम कितनी ही उन्नति कर लें, धन-सम्पदा प्राप्त कर लें, यश-प्रसिद्धि प्राप्त कर लें पर शांति उपलब्ध न कर सकें तो हमारा वर्तमान जीवन ही नहीं बल्कि भावी जीवन भी दुःखी हो जायेगा। हम बाहर से तो सम्पन्न दिखाई देंगे पर भीतर ही भीतर विपन्न होते जायेंगे। बाहर से खुश दिखाई देंगे पर हमारे अंदर हाहाकार मचा रहेगा, बाहर से भरे-पूरे और धनवान दिखाई देंगे परंतु अंदर से खाली और दरिद्र होंगे। जब अंतकाल में इस शरीर को छोड़कर आगे की यात्रा पर निकलेंगे तब घोर दरिद्री और दुःखी अवस्था में होंगे, शांति हमें तब भी नसीब न होगी क्योंकि धन-वैभव, यश-प्रसिद्धि आदि सब यहीं छूट जायेंगे। सिर्फ हमारे कर्म और संस्कार ही हमारे साथ जायेंगे। शांति उपलब्ध करने के लिए जिन प्रयासों की जरूरत होती है उन्हें हमें ठीक से जानना व समझना होगा और उन्हें अमल में लाना होगा। अशांति पैदा करने वाले कामों से बचना होगा और शांति उपलब्ध कराने वाले गुणों को धारण करके संकोच छोड़ना होगा। जैसे—अपनी गलती मान लेना शर्म की बात नहीं होती, क्षमा कर देना कायरता की बात नहीं होती, सहनशील होने का मतलब मजबूर होना नहीं होता है और धैर्य धारण करना अकर्मण्यता

की बात नहीं होती बल्कि गहराई से देखा जाये तो ये सभी गुण हमारे व्यक्तित्व विकास और आत्मोन्नति में सहायक होते हैं। अपनी गलती मान लेने से अपना सुधार ही होता है, क्षमा मांग लेने से अहंकार नष्ट होता है और क्षमा कर देने से वैर नष्ट होता है। सहनशीलता से मनोबल में वृद्धि होती है और धैर्य रखने से अंततः सफलता मिल जाती है।

**समय अमूल्य है**—जीवन का प्रत्येक क्षण अमूल्य है, अतः समय का सदा सदुपयोग करना चाहिए। महिलाएं भी फालतू समय में घरेलू उद्योग का कार्य करें तो परिवार की आय बढ़ सकती है। बीता हुआ समय कभी वापस नहीं आता है। दूरदर्शन पर अश्लील सीरियल देखने, मोबाइल में यू ट्यूब, वाट्सएप, फेसबुक आदि में तथा परनिन्दा एवं फालतू की गपशप करने में समय बर्बाद न करें। बुजुर्ग व्यक्तियों को सेवानिवृत्ति के पश्चात स्वाध्याय, विद्यार्थियों को अध्ययन कराना, सत्संग, सामाजिक, धार्मिक संस्थाओं में प्रतिदिन दो-तीन घंटे का समय अवश्य देना चाहिए। अभिभावकों को युवा-युवतियों के मित्रों के बारे में जानकारी लेते रहना चाहिए। ध्यान रखें कि वे अच्छे परिवार के बच्चों की संगति ही करें।

**गृहस्थ धर्म**—गृहस्थ का धर्म है कि पत्नीव्रत का पालन करें, घर में प्रतिदिन अपने ईष्ट की आराधना, उपासना, सत्संग करें। घर में जाने-अनजाने धूल आती है और इसे बुहारी करनी ही पड़ती है। जिस प्रकार घर में धूल आती है उसी प्रकार सांसारिक व्यवहार का काम करते समय मन में भी धूल आती है। विकार, वासना, आसक्ति, द्वेष, विषमता सब धूल है। इसलिए सप्ताह में एक दिन परिवार के सभी सदस्यों को सामूहिक सत्संग करने की बहुत आवश्यकता है। श्रेष्ठ संतों का सत्संग करने से गृहस्थाश्रम दिव्य बनता है। यदि कभी जाने-अनजाने में कोई भूल हो जाये तो उसे स्वीकार करना हृदय के अंदर के कूड़े-कचरे एवं दोषों को दूर करने के समान है।

**बुद्धि का सदुपयोग**—दुनिया में क्या नहीं है! यहां हर प्रयोजन की हर चीज मौजूद है, पर उसका

मतलब यह तो नहीं कि वे सब अपने लिए ही हैं। चंचल मन देते समय प्रकृति ने मनुष्य को विवेक भी दिया है, जिसके सहारे यह जान सके कि अपने लिए क्या उपयोगी है और क्या अनुपयोगी है? क्या अपनी सामर्थ्य के भीतर है, और क्या बाहर है? परामर्श देने वालों की जो मनःस्थिति, योग्यता, साधन-परिकर व वातावरण है वह अपने पास भी हो, यह आवश्यक नहीं। ऐसी दशा में हर विचारशील व्यक्ति को अपनी स्वतंत्र बुद्धि का ही उपयोग करना चाहिए। खान-पान में अपनी बुद्धि का सदुपयोग करना चाहिए। अपनी समझ में कोई बुरा कार्य मत करो, बुरी नीयत मत रक्खो। फल बुरा हो तो शोक मत करो।

**महानता**—बुराई में अच्छाई खोजना व अच्छाई को अपनाना, साथ ही बुराई को भूल जाना महानता का लक्षण है। श्रीराम से हारकर रावण जब मरणासन्न अवस्था में पहुंच गया तब राम ने लक्ष्मण से कहा— रावण से हित वचन ले लो। लक्ष्मण रावण के समीप गये तब रावण जो सर्वशक्तिमान व पंडित भी थे, अंत समय में उसने कहा—शक्ति का सदुपयोग व दुरुपयोग दोनों अपने मन पर निर्भर है। यदि बुरे विचार आने पर क्रियान्वित करने में विलंब किया जाये तो कदाचित्त बुरे विचार लुप्त हो जायें व अच्छे विचार पुनः आने लगे जायें, उस स्थिति में पाप से बचा जा सकता है, अर्थात् बुरे विचार आने पर पीछे हट जाओ। दुबारा विचार करके विवेक को जगाओ, सही रास्ता मिल जायेगा।

**प्रामाणिकता**—प्रामाणिकता का आधार है, मैं जैसा भी हूँ उससे अन्यथा स्वयं को मानने और दिखाने की चेष्टा न करूं। मैं ऐसा क्यों सोचूं जिसे कह न सकूं। जिसे कर सकूं मैं वैसा ही सोचूं और जिसे कह सकूं उसे कर सकूं। ऐसी कथनी-करनी की समानता या मन, वचन और काया की समरसता ही प्रामाणिकता है। प्रामाणिकता के लिए चाहिए हृदय की सरलता, मन की स्पष्टता, वाणी का विवेक। छल-कपट एवं झूठा प्रदर्शन करने वाला व्यक्ति कभी भी प्रामाणिक नहीं हो सकता

है। झूठे दिखावे में अपनी हैसियत से अधिक व्यय करना बुद्धिमानी नहीं है। मितव्ययी बने। शादी-विवाह एवं अन्य पारिवारिक प्रसंगों में दूसरों का अन्धानुकरण न करें।

**सुख-दुःख एवं कष्ट**—अति सुख अच्छा नहीं है। जीवन में दुःख तो होना ही चाहिए। दुःख से सदबुद्धि आती है। अति सुख में आदमी होश खो बैठता है। अति मान-सम्मान, अतुल धन-सम्पत्ति पास हो तो भी अच्छा नहीं है। मीठे के साथ नमकीन भी जरूरी है। वैसे ही सुख के साथ थोड़ा दुःख भी जरूरी है। यदि तुम किसी को कष्ट दोगे तो वह तुम्हें भी दुःखी बनायेगा, किसी को धोखा दोगे तो स्वयं भी धोखा पाओगे क्योंकि क्रिया की प्रतिक्रिया तो होगी ही। इसलिए यदि तुम शांत, सुखी और आनंदित रहना चाहते हो तो वही कार्य करो जो दूसरों को शांत, सुखी और आनंदित कर सके। कहावत है—

*चार वेद छः शास्त्र में, बात मिली हैं दोगी।*

*दुख दीन्हें दुख होत है, सुख दीन्हें सुख होय॥*

जैसा व्यवहार आप दूसरों से चाहते हैं वैसा ही दूसरों के साथ करें। अपने परिवार, सगे-सम्बन्धी तथा समाज के सदस्यों की भावनाओं का आदर करना चाहिए।

**संयम**—आज जीवन में पवित्रता एवं पुरुषार्थ की बजाय स्वार्थलोलुपता एवं कामांधता बढ़ रही है। मदिरापान, मांस सेवन, व्यभिचार, हिंसा, अश्लील चलचित्रों का प्रदर्शन आदि का प्रचलन दिनोदिन बढ़ रहा है। परिणामस्वरूप मानव वासनाओं की आंधी में बेतहाशा उड़ा जा रहा है। दुर्व्यसनों के कारण अनेक रोगों का शिकार हो रहा है। जीवन को मधुर, उल्लासमय और आनन्दमय इन्द्रियों पर संयम रखकर ही बनाया जा सकता है। सादा जीवन उच्च विचार, यही है जीवन का सार। समय के साथ-साथ सुख-दुःख सभी स्थिति में धैर्य धारण करना जरूरी है। महत्त्वपूर्ण कार्यों में निर्णय लेने में जल्दबाजी नहीं करें। कहावत है “उतावला सो बावला।” कहा भी है—

*बिना विचारे जो करे, सो पाछे पछताय।*

*काम बिगारे आपनो, जग में होत हँसाय॥*

**सहनशीलता**—जीवन में सफलता का मूल है सहनशीलता और समर्पण। सहनशीलता का मूल है समझदारी और समर्पण का मूल है स्नेह। समर्पण के बिना पारिवारिक जीवन नीरस हो जाता है। सम्पन्न व सुखी परिवार वही है जहां सभी आपस में स्नेह व समर्पण की भावना को महत्त्व देते हैं।

**संतोष**—आत्मशांति के लिए संतोष ही परम धन है। असन्तोषी के लिए संसार की समस्त विभूति भी अपर्याप्त है। संतों का कहना है—

*गोधन गजधन बाजिधन, और रत्न धन खान।*

*जब आये संतोष धन, सब धन धूरि समान॥*

उपर्युक्त सूत्रों को जीवन में अपनाने के साथ-साथ सदैव प्रसन्न तथा हंसमुख रहें, प्रतिदिन एक नेक कार्य करें। सदैव व्यस्त एवं मस्त रहें, किन्तु अस्त-व्यस्त नहीं रहें। कुछ समय दीन-दुखियों की सेवा में लगावें तथा अपनी सोच सकारात्मक रखें। सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य है अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखना। क्योंकि स्वस्थ रहकर ही आप सभी कार्य प्रसन्नतापूर्वक कर सकते हैं। कहावत है—“Healthy mind in a healthy body” □

- ❖ अच्छे लोगों की सबसे बड़ी खूबी यह होती है कि उन्हें याद रखना नहीं पड़ता, वे याद रह जाते हैं।
- ❖ दूसरों की सहायता करते समय यदि मन में प्रसन्नता हो तो वही सेवा है, बाकी सब दिखावा है।
- ❖ सत्य के मार्ग में इतनी तेजी से चलो कि लोगों के बुराई के धागे आपके पैरों में आकर टूट जायें।
- ❖ आप अपना भविष्य नहीं बदल सकते, किन्तु आप अपनी आदतों को बदल सकते हैं। और फिर आपकी बदली हुई आदतों से निश्चित रूप से आपका भविष्य बदल सकता है।

## परमार्थ पथ

### सद्गुरु ज्ञान ठिकाना है

दूसरे के दोषों से तुम्हारा कोई प्रयोजन नहीं है। दूसरों के दोषों की याद न करो, उनकी चर्चा न करो और ऐसी चर्चा सुनने की रुचि न रखो। यह संसार बड़ा टेढ़ा है। इसमें बड़ी सावधानी से जीवन व्यतीत करो। किसी से तुम्हारा कोई प्रयोजन नहीं है। तुम्हारा प्रयोजन केवल तुमसे है। यह जीवन केवल असंग दशा में रहकर परमशांति में जीने के लिए है, यह निश्चय करके इसी की साधना में रहो। किसी के साथ कुछ रहने वाला नहीं है। जीव अकेला है, अतएव अपने अकेलेपन का हर क्षण स्मरण रखना और इसी दशा में जीना जीवन्मुक्ति का पथ है। परम शांति ही सच्चा सुख है जो तृष्णा त्याग से संभव है।

आना-जाना, मिलना-बिछुड़ना, लेना-देना सब हवा के झोंके की तरह बह जाता है। दृश्यों में “रीझ खीज रहि शेष।” यह चेतन जड़ दृश्यों में रीझता है और खीजता है और दृश्य भाग जाते हैं। द्रष्टा शेष रह जाता है। द्रष्टा की विशेषता है, दृश्य के प्रभाव में न आकर सदैव उदासीन रहे। उदासीनता में ही शांति है। कितना अपना प्यारा माना जाये, वह रहेगा नहीं। इसलिए जड़दृश्य को प्यारा मानना धोखा है। परम प्यारा स्वरूप, स्व-अस्तित्व एवं आत्मा है।

दृश्य भागा जा रहा है। दूसरे की भूलचूक की बातें और अपनी भूलचूक की बातें भूल जाओ। स्वयं व्यवहार में सावधान रहो और दूसरों की बातों पर विचार कर यथायोग्य व्यवहार करो। हर क्षण अमर्ष-रहित रहो। कुछ रहेगा नहीं। सब कुछ भागा जा रहा है। किसके साथ क्या रह जाता है? सारा संबंध स्वप्नवत है। किस बात को लेकर हर्ष किया जाये और किस बात

को लेकर अमर्ष? दृढ़ विवेक से ही मन का बवंडर काटकर शांति में रहा जा सकता है। जीवन में पुराने-नये प्राणियों का व्यवहार आता है। उनमें कूड़ा-कचड़ा आना स्वाभाविक है। उनसे अपने को निर्विकार रखना सच्चा विवेक है।

क्या मिलता है, क्या छुटता है, किसने हमारा आदर किया, किसने हमारा अनादर किया, किसने हमारा ध्यान रखा, किसने हमारी उपेक्षा की, इन बातों में कोई दम नहीं है। जीवन में एक ही बात का महत्त्व है, चित्त का निरंतर स्वच्छ रहना, स्वरूप-भाव का स्मरण रहना, जड़दृश्य का अभाव रहना, स्वस्वरूप का भाव रहना। मन का हर क्षण स्वरूप-भाव में निमग्न रहना जीवन का फल है। साथ के लोग, बाहर के लोग हमारे विषय में कैसा विचार रखते हैं, इस बात का क्या मूल्य है? मैं किस स्थिति में रहता हूँ इसका महत्त्व है। सबको चित्त से उतार दो। सब संबंध झूठ है। स्वरूपस्थिति सत्य है।

हमारे पिता, पितामहों और गुरुओं के जीवन, उनकी उपलब्धियां और उनका काल सब झूठ होकर रह गया। मेरे अपने माने गये शरीर की पूर्व अवस्थाएं, पूर्व में जहां-जहां गये, रहे, जो-जो प्राणी-पदार्थ मिले, जो अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियां मिलीं, गांव, नगर सड़कें, पेड़-पौधे, पर्वत आदि मिले, सब झूठ हो गये। जब देह झूठ हो जाती है जो सारी गतिविधियों और उपलब्धियों का आधार है, तब क्या रह जायेगा मेरे पास। मेरे पास सदैव मैं हूँ। अतएव सदैव मैं में ही पूर्ण संतुष्ट रहना बुद्धिमानी है। इसी से छुटकारा है।

मनुष्य अपनी रहनी का सुधार नहीं करना चाहता है, अपितु गुरु-न्याय पर ही गुस्सा करता है। ऐसे मनुष्य का मन भटक जाता है और वह शुद्ध संग छोड़कर कुसंग करता है। सम्यक बुद्धि और विचार होना किसी विरल व्यक्ति में संभव है। किंतु माता-पिता, बड़े-बूढ़ों, सुजनमित्रों और गुरु-संतों की सीख मानने वाला

कुपथगामी नहीं होता। घमंड मनुष्य को डुबो देता है। न वह सत्य समझ पाता है और न अपने हितचिंतकों की सम्मति मानता है। सद्गुरु का यह वचन सदैव स्मरणीय है—“तरने को है दीनता, डूबन को अभिमान।” तुम सबसे निष्काम और निर्मान रहकर स्वरूपस्थिति में विराजो। सारा संबंध क्षणिक होने से झूठ है। अपनी हानि कहीं है ही नहीं।

\* \* \*

वातावरण समशीतोष्ण है। गंगा के विशाल बालुरेत से छनकर हवा आने से बाह्य वातावरण पवित्र है। साधु-समाज सेवा, स्वाध्याय और साधना रत होने से सामाजिक वातावरण पवित्र है और मन दृश्य का अभाव कर स्वस्वरूप का अनुरागी होने से भीतर की मानसिक दशा पवित्र है। बाह्य वातावरण और सामाजिक वातावरण तो अपने वश में न होने से उसमें कुछ त्रुटि आ सकती है, परंतु भीतर की बात तो पूरा अपने अधीन है। जिसका मन सब समय इस छूटने वाले संसार से हटकर अंतर्मुख रहता है वह धन्य है। किसी के साथ कुछ रहने वाला नहीं है। इसलिए सब तरफ से निर्मोह रहो।

\* \* \*

सब काम पूरा है। मन का पूर्ण संतोष सब काम है। परंतु बाहर का भी जो काम करना था, वह कर दिया है। भीतर का तो पूरा है ही। अब इसी आत्मसंतोष में अवशेष जीवन जीना है। इस माटी के देश में क्या प्राप्त करना है। सब तरफ केवल माटी है। अतृप्त वासना का अर्थ है भ्रम में जीना। जिसका सारा भ्रम कट गया है, वह सब समय तृप्त रहता है। उसके जीवन में कुछ अतृप्ति रहती ही नहीं। मन का भटकना तभी बंद होता है जब वह सब समय पूर्ण तृप्त रहता है। स्वरूपबोध की परिपक्वता तथा विषयों की पूर्ण असारता का भाव दृढ़ होने पर परम शांति ही शेष रहती है।

\* \* \*

दृश्य-अभाव महा ध्यान है। सुषुप्ति में दृश्य नहीं रहता है। शरीर छूट जाने पर दृश्य नहीं रहता है।

विदेह-मोक्ष में दृश्य नहीं रहता है। जीव को परम अभीष्ट मोक्ष है, और विदेह-मोक्ष अनंत है और उसमें दृश्य नहीं रहता है। अतएव आज ही दृश्य-अभाव होना चाहिए, तभी अनंत काल के लिए दृश्य-अभाव होने वाला विदेह-मोक्ष होना संभव है जहां दुखों का अत्यंत अभाव है। यह गंदी देह रहने वाली नहीं है और इससे दृश्यमान जड़ दृश्य का संबंध रहने वाला नहीं है। अतएव इन सबका अभाव आज ही से करके अपने आप में सदैव तृप्त रहना साधक की सच्ची समझदारी होगी।

\* \* \*

शरीर आज-कल में छूट जाने वाला है, फिर राग-द्वेष का क्या अर्थ है? जिन प्राणी, पदार्थों और परिस्थितियों को लेकर राग-द्वेष होते हैं, वे क्षण-क्षण बदलते हैं और अंततः सदा के लिए छूट जाते हैं। फिर इन स्वप्नवत, क्षणिक पदार्थों के लिए मन का मलाल कैसा? जो साधक सदैव विदेहस्थिति को देखता है, वह देह-संबंधी जड़-दृश्यों के लिए अपने मन में मैल नहीं लाता। मन का मल अज्ञान से उत्पन्न होता है। ज्ञान की यथार्थ स्थिति हर क्षण बनी रहने पर मन में मैल आ ही नहीं सकता। सदैव निर्मल मन से रहना जीवन की पूर्ण सफलता है।

\* \* \*

बद्ध जीव हो या जीवन्मुक्त जीव, सबका दृश्य-दर्शन अत्यंत अल्प है, और परिचित दृश्य अभाव अनंत है। बद्धजीव जो कुछ आज अपना मानता और देखता है, वह शरीर छूटने पर सदैव के लिए समाप्त हो जायेगा। वह उसका दर्शन उस मान्यता से कभी नहीं करेगा; और जीवन्मुक्त जीव देह छूटते ही सदैव के लिए जड़-दृश्य से अत्यंत परे हो जायेगा। उसे सदैव के लिए जड़-दृश्य लुप्त हो जायेगा। अतएव आज दृश्यों को लेकर किसी प्रकार का मोह-शोक नहीं करना चाहिए। यह देह-संबंध बोधवान की दृष्टि में मानो है ही नहीं। इसलिए जो अनंत मोक्ष को देखता है, वह दृश्य को देखते हुए भी मानो नहीं देखता है।

□



## मानव तू सबसे महान

लेखक—सौम्येन्द्र दास

सद्गुरु कबीर साहेब ने मनुष्य को महान कहा है। क्यों? क्योंकि इसमें महानता के गुण हैं “मानुष तेरा गुण बड़ा”। मनुष्य में मनन तथा विवेक करने की शक्ति है “मननात् मनुष्यः”। मनुष्य किस कारण से महान है— गुणों के कारण, सद्गुणों के कारण, विवेक-विचार के कारण।

जब मनुष्य महान है, गुणवान है, ज्ञानवान है, क्षमावान, दयावान है, तो घर में, समाज में, राष्ट्र में अत्याचार क्यों है? भ्रष्टाचार क्यों है? पापाचार, लूटपाट, घोटाला क्यों है? यह सब करने वाले कौन हैं? जानवर हैं या मनुष्य, भगवान है या शैतान? ये सब करने वाले भी तो मनुष्य हैं। यदि ये सब करने वाले मनुष्य हैं तो फिर इनकी महानता कहां गई? क्यों महान कहे जाने वाले मनुष्यों से भय लगता है। धन का, धर्म का, मान-मर्यादा का और सभी प्रकार से भेद कहां पड़ जाता है और यह कहना पड़ता है—

*आदमी की शक्ति से, अब डर रहा है आदमी।*

*आदमी को लूटकर, घर भर रहा है आदमी॥*

*आदमी ही मारता है, मर रहा है आदमी।*

*समझ कुछ आता नहीं, क्या कर रहा है आदमी॥*

क्या अलग से कोई होता है जो मनुष्य का रूप बनाकर यह सब अत्याचार करता है? जी नहीं, मनुष्य को छोड़कर कोई नहीं होता। मनुष्य के दो रूप हैं— एक महानता का और दूसरा तुच्छता का, प्रभुता का और पशुता का।

*एक ही मंदर में कंकर और शंकर होते हैं,*

*एक ही समंदर में अमृत और जहर होते हैं।*

*चुनाव का जमाना है साहब तो कर लो चुनाव,*

*हमारे ही अंदर प्रभुता और पशुता होते हैं॥*

गीता में श्री कृष्ण दैवी संपदा और आसुरी संपदा की बात कहते हैं—

*द्वौ भूतसर्गो लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च॥ 16/6 ॥*

इस लोक में भूतों यानि मनुष्यों के स्वभाव दो प्रकार के होते हैं—देवों के जैसा और असुरों के जैसा। जब हृदय में दैवी संपदा कार्यरूप ले लेती है तो मनुष्य ही देवता है, और जब आसुरी संपदा का बाहुल्य हो तो मनुष्य ही असुर है। मनुष्यों में ये दो ही जातियां हैं— वह चाहे कहीं भी पैदा हुआ हो।

दैवी संपदा वाले मनुष्यों में निर्भयता, अंतःकरण की शुद्धि, इंद्रियों का दमन, मन का शमन, स्वरूप का स्मरण, अपने लक्ष्य से विमुख होने में लज्जा, धैर्य, क्षमा, कोमलता आदि लक्षण होते हैं और ये आंशिक रूप में सभी मनुष्यों में हैं। आसुरी संपदा वाले मनुष्यों में भी ये गुण हैं किन्तु प्रसुप्त रहते हैं, तभी तो घोर पापी को भी कल्याण का अधिकार है।

आसुरी संपदा वाले मनुष्यों के संक्षिप्त में लक्षण हैं—पाखण्ड, घमण्ड, अभिमान, क्रोध, कठोर वाणी और अज्ञान।

इन दोनों प्रकार की संपदाओं में से दैवी संपदा तो ‘विमोक्षाय’ मोक्ष के लिए और आसुरी संपदा बंधन के लिए मानी गयी है। मनुष्यों में जो देवता और दानव नजर आते हैं वह इन्हीं गुणों के कारण—

*आदमी ही देव और आदमी ही दानव है,*

*आदमी ही समाज को उठाने वाला मानव है।*

*आदमी ही नेकी बदी दोनों को जानता है,*

*आदमी ही छुड़ाता और आदमी ही बांधता है॥*

सद्गुरु कबीर कहते हैं—

*बहु बंधन से बाँधिया, एक बिचारा जीव।*

*की बल छूटे आपने, की रे छुड़ावै पीव॥*

स्वामी शंकराचार्य कहते हैं—

*न देवा असुरा वा अन्ये केचन विद्यन्ते मनुष्येभ्यः*

*मनुष्य से अलग कहीं देव तथा असुर नहीं हैं।*

सिद्धार्थ गौतम विरक्त हो भगवान बुद्ध कैसे हो गये; रत्नाकर जैसे डाकू महर्षि बाल्मिकी कैसे हो गये; डाकू अंगुलीमाल भिक्षु कैसे हो गये, राजा भर्तृहरि संन्यासी कैसे हो गये। क्योंकि मनुष्य में यह गुण है, बल है कि वह अपने को सबसे छोड़ा सकता है। सभी आसक्ति को, बंधनों को तोड़कर पक्षपातरहित जीवन, आजादी का जीवन जी सकता है, क्योंकि मनुष्य में महानता के गुण हैं।

*नर नारायण रूप है, तू मति जाने देह।*

*समझ होय तो समझ ले, खलक पलक में खेह॥*

नर में ही नारायण है उसी का भजन कर, अनुभव कर। शरीर तो उसका खोल है। शरीर भजने लायक नहीं है। शरीर-संसार तो पल भर में ही खो जायेगा। न शरीर में सुख है न संसार में।

*काशी घूम ले मथुरा घूम ले, घूम ले चाहे बन-बन।*

*नर में है नारायण बंदे, नर में है नारायण॥*

यदि नर में नारायण है तो अनुभव क्यों नहीं होता क्योंकि हमारा मन माया में लगा हुआ है? 'तू बंदे माया का लोभी, ममता महल बनाया।' मन माया का लोभी है, ममता का महल खड़ा करना चाहता है तब फिर कैसे जानेंगे कि इस पांच तत्त्व से निर्मित शरीर के अंदर परम पद की प्राप्ति होगी। इस मर्म को हम अभी तक नहीं जान पाये, इतने दिन तो बीत गये शरीर में रहते—

*रूह और जिस्म का रिश्ता भी अजीब है।*

*जिंदगी भर साथ रहे मगर तवरुफ न हुआ॥*

तवरुफ यानि पहचान, परिचय नहीं हुआ मैं का कि मैं कौन हूँ?

तो फिर इसके मर्म को कौन जानता है? कबीर साहेब के शब्दों में देखें—

*पाँच तत्त्व के भीतरे, गुप्त बस्तु अस्थान।*

*बिरला मर्म कोई पाई हैं, गुरु के शब्द प्रमाण॥*

(बी. सा. 27)

सद्गुरु के निर्णय वचनों से पता चलेगा। उसे देखता कौन है, समझता कौन है? क्योंकि ये कहने,

सुनने मात्र से स्थिति नहीं होती, लिखने-पढ़ने मात्र से भी स्वरूप का, आत्मा का बोध नहीं होता।

*अंतःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो यं पश्यति यतयः क्षीणदोषाः।*

शुद्ध-बुद्ध ज्ञानमय आत्मा शरीर के भीतर ही विद्यमान है। जिनके राग-द्वेषादि दोष नष्ट हो गये हैं, ऐसे संयमी साधक उसका अनुभव करते हैं। हम चाहे जितना जानें और चाहे जितनी पूजा-आराधना करें, शिष्य बना लें, शाखा बढ़ा लें, हमारे बहुत से जानने-मानने वाले हो जायें, हमारे बड़े-बड़े बैनर-पोस्टर लगने लगें, किन्तु दोषों को छोड़े बिना हमें शांति नहीं मिल सकती और न ही स्वरूपस्थिति होगी। हां, ज्ञानी होने का, साधु होने का, त्यागी होने, भक्त होने का, धार्मिक होने का ढोंग किया जा सकता है। परंतु इस ढोंग में अपने आत्मा से, परमात्मा से कभी नहीं मिल पायेंगे। यही कारण है आज धर्म के नाम पर व्यापार चल रहा है। बड़े-बड़े साधु कहलाने वाले, भक्त कहलाने वाले, धार्मिक कहलाने वाले लोगों से डर लगने लगा है। आज मीडिया के माध्यम से देखने को मिल रहा है कि अपने को ईश्वर का अवतार कहने वाले गुरुओं की स्थिति कितनी दयनीय है। कितने छल-छद्मों से भरा हुआ है। और क्या-क्या कर्मकांड, हथकंडे अपनाते हैं, नाम, प्रसिद्धि, रुपये, पैसे कमाने के लिए।

आज शिक्षा बढ़ी है, रुपये-पैसे बढ़े हैं और इसके साथ चालाकी, धोखाधड़ी, अत्याचार, व्यभिचार, दुर्व्यसन, अहंकार बढ़े हैं। और अब तो सामूहिक हत्या भी हो रही है। ये सब कौन कर और करवा रहा है? क्या आकाश में कोई शैतान छुपा है जो अकेली देखकर बहन-बेटियों से छेड़खानी करता है। दिन-दहाड़े मंदिर-मस्जिद या धार्मिक स्थानों, विद्यालयों में सैकड़ों-हजारों को मारकर चला जाता है। ये कौन करता और करवाता है? शैतान, भगवान या फिर इंसान। यह सब किसका काम हो सकता है?

आज सभी लोग पढ़े-लिखे हैं, आज जनता की अदालत चलती है, आपकी अदालत चलती है, इसका न्याय आप ही करें। आपकी अदालत में न्याय हो। आप

खुद समझें, खुद से निर्णय लें। आप सक्षम हैं कि यह किसका काम हो सकता है। अगर यह पाप कोई शैतान कराता है, तब तो भगवान, अल्लाह की जरूरत है। उसको जगाना जरूरी है और उसको जागना चाहिए, क्योंकि पाप बढ़ते जा रहे हैं। और अगर ये पाप भगवान कराते हैं, तब होने दें ये सामूहिक दुष्कर्म, दंगा-फसाद, अनाचार-अत्याचार और पापाचार क्योंकि ये सब भगवान की लीला है। किसको दोषी ठहराओगे? ये तो भगवान की मरजी से हो रहा है, और शायद अच्छे के लिए कर रहे हों? और अगर ये इंसान का काम है तो खुद में, समाज में सुधार की आवश्यकता है। इसके लिए नियम, कानून, कायदे, शिक्षा, स्वाध्याय, सत्संग, साधना, संत-गुरु का आधार जरूरी है।

आवश्यकता है सही शिक्षा, मागदर्शन, संस्कार एवं साहित्य की जो हमारी गलत मान्यता, परंपरा, अंधविश्वास, चमत्कार को तोड़ सके और हम स्वावलंबी जीवन, स्वाभिमानी जीवन और सद्गुणी जीवन जी सकें। आओ इसके लिए अपने को, अपने दिलो-दिमाग को तैयार करें, और ऐसी शिक्षा, संस्कार, साहित्य, महापुरुष और संत-गुरु की तलाश करें। और इसके साथ अपने विवेक-विचार की शक्ति को बढ़ायें, सोचें-समझें, विचारें, अपने अंदर के मनुष्यत्व को उजागर कर या अपनी आत्मा की सत्ता को समझकर, सारे दोषों और दुर्गुणों का त्याग करें तभी हम सभी इसी मानव जीवन में महानता को उपलब्ध हो सकते हैं। इसलिए “मानव तू है सबसे महान।”

## अहंकार न करें

लेखक—श्री भावसिंह हिरवानी

हम सब जानते हैं इस संसार की सारी चीजें नाशवान हैं तथा इनका वियोग अवश्यंभावी है। एक न एक दिन इन सबको खत्म हो जाना है। यहां ऐसा कुछ भी नजर नहीं आता जो चिरस्थायी हो। यह संसार ही परिवर्तनशील है, यहां नित्य चीजें बनती भी हैं तो बिगड़ती भी हैं। यही प्रकृति का नियम है। जो जन्म लेता है, वह मरता है, यह अटल सत्य है। इससे आज तक कोई नहीं बच सका। तात्पर्य यह कि आज नहीं तो कल इस संसार के प्राणी-पदार्थों से हमारा संबंध खत्म हो जायेगा। और तो और जिसे हम अपना मानकर गर्व से फूले रहते हैं वह शरीर अंततः जर्जर होकर खत्म हो जाता है। फिर भी लोग अपनी थोड़ी उपलब्धि पर ही अहंकार में चूर रहते हैं।

अधिकांश लोगों को अपनी धन-संपत्ति का बहुत अहंकार होता है। वे अपने सामने किसी को कुछ

समझते ही नहीं, लेकिन समय सदा एक-सा नहीं रहता और अमीर को गरीब होते देर नहीं लगती। इसके अलावा इंसान को छोटी-छोटी चीजों का भी बहुत अभिमान होता है। किसी को अपनी जवानी का अहंकार होता है तो किसी को अपने सौंदर्य का। मान-बड़ाई का घमंड भी लोगों को बौरा ही देता है। कुछ लोग अपनी ताकत के घमंड में फूले रहते हैं। पद-प्रतिष्ठा का अहंकार भी कम नहीं होता। सत्ता-शक्ति का अभिमान तो लोगों के सिर चढ़कर बोलता है। लेकिन जब इसका अंत होता है तब ऐसे लोगों की दुर्गति देखते ही बनती है।

रामचरितमानस और महाभारत इन दो महाकाव्यों ने भारतीय जनमानस को बहुत गहराई तक प्रभावित किया है। हम बचपन से इनकी गाथाओं को पढ़ते और सुनते आ रहे हैं। रामचरितमानस के रावण और महाभारत

कथा के दुर्योधन के विनाश का कारण केवल और केवल उनका अहंकार था। रावण बहुत बुद्धिमान और शक्तिशाली था। वह धन-संपत्ति से भी संपन्न था। कहते हैं, उसकी नगरी लंका सोने की थी। उसके पास सैन्य शक्ति के साथ मायावी शक्ति भी थी। इतना ही नहीं रावण के पास पुष्पक विमान भी था जिससे वह आकाश मार्ग से यात्रा करने में सक्षम था। मगर दुर्भाग्य, उसने किसी की सलाह नहीं मानी। उसके करीबी लोगों ने बहुत समझाया कि सीता को लौटाकर राम से संधि कर लो पर वह राजी नहीं हुआ। अंततः युद्ध में राम के हाथों मारा गया। रावण को अपनी शक्ति का बहुत अहंकार था और यही अहंकार उसके विनाश का कारण बना।

दुर्योधन की कहानी भी लगभग इसी तरह की है। उसे भी अपनी सेना और शक्ति का बहुत अभिमान था। उसने अहंकारवश आधा राज्य के हकदार पांडवों का तिरस्कार किया फिर भी पांडव केवल पांच गांव लेकर संतोष करने को तैयार थे। मगर दुर्योधन उन्हें सुई की नोक के बराबर भी जमीन देने को राजी नहीं हुआ। परिणामस्वरूप महाभारत का युद्ध हुआ और जिन पराक्रमी शूरवीरों पर दुर्योधन को बहुत घमंड था वे सब उसकी आंखों के आगे धराशायी होते चले गये और विशाल कौरव सेना परास्त हो गयी। उसके अहंकार के कारण कौरव वंश का विनाश हो गया। साथ ही उनके भाई पांडवों के अनेक प्रियजन भी मौत के मुंह में समा गये।

जीवन थोड़े दिनों का है, फिर भी यह बहुत खूबसूरत है। कुछ ऐसा करें जिससे स्वयं को भी खुशी मिले और दूसरे भी प्रसन्न रहें, इसी में जीवन की सार्थकता है। जो धन-दौलत, मान-बड़ाई हमने पाया है कुछ भी हमारे साथ जाने वाला नहीं है। इसका आशय यह कदापि नहीं है कि आदमी अकर्मण्य बने हाथ पर हाथ धरे बैठा रहे। हर इंसान का कर्तव्य है कि वह शक्ति चले तक श्रम करे और नीतिपूर्वक धन का उपार्जन करे। जीवन निर्वाह के लिए धन की

## गुरुचरण बलिहारी

रचयिता—हेमन्त हरिलाल साहू

गुरु चरण कमल बलिहारी जी  
हे बसइया आनन्द अटारी जी  
हर पल हर घड़ी ध्यान धरु मीत  
छुटे ना लगन कभी गुरु चरणन प्रीत  
नाशक भव भय भ्रम सारी जी ॥ 1 ॥

तुम बिनु प्रभु जी कवन हमारे  
खानि बानि परखावन हारे  
ये दुनिया मतलब के यारी जी ॥ 2 ॥

निज स्वरूप का बोध कराये  
ताहि छांडि कछु और ना भाये  
कर दो राग द्वेष से न्यारी जी ॥ 3 ॥

हूँ अनादि से भटका खाया  
हे सद्गुरु अब शरण हूँ आया  
सकलो दोष द्वन्द्व दुख हारी जी ॥ 4 ॥

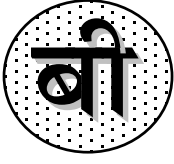
भूत भविष्य की चिन्ता त्यागी  
वर्तमान सन्तोष विरागी  
'हेमन्त' शान्त सहज पग धारी जी ॥ 5 ॥

☞ आवश्यकता है, इससे कोई इंकार नहीं कर सकता। किन्तु पागलों की तरह जीवन भर सांसारिक प्राणी-पदार्थों के पीछे भागते रहना केवल मूर्खता है। और इनको पाकर अहंकार करना तो और भी बेवकूफी है।

मतलब यह कि इस दुनिया में ऐसी कोई चीज नहीं जिस पर अहंकार किया जाए। धन-संपत्ति, पद-प्रतिष्ठा, रिश्ते-नाते सब, कुछ समय के लिए होते हैं। भाग्यवश हम सब एक साथ मिल गये हैं। सब मिलजुलकर प्रेमपूर्वक जीवन जियें यही श्रेयष्कर है। न इनका मोह अच्छा, न अहंकार। जिसने भी इनका अहंकार किया उसका विनाश हुआ। इस संदर्भ में संत कबीर की वाणी स्मरण रखने योग्य है—

कबीर गर्व न कीजिये, काल गहे कर केस।

ना जाने कब मारि हैं, क्या घर क्या परदेश॥ □



## जक चिंतन

### भूलभुलैया में जीवन मत बिताओ

शब्द-106

भँवर उड़े बग बैठे आई, रैन गई दिवसो चलि जाई॥  
हल हल काँपे बाला जीव, ना जानों का करिहैं पीव॥  
काँचे बासन टिके न पानी, उड़ि गये हंस काया कुम्हिलानी॥  
काग उड़ावत भुजा पिरानी, कहहिं कबीर यह कथा सिरानी॥

**शब्दार्थ**—भँवर= काले बाल। बग= उजले बाल।  
बाला जीव= भोला एवं मूढ़ मनुष्य। पीव= दैव।  
बासन= बरतन, शरीर। हंस= जीव। कुम्हिलानी= मुरझा  
गया, सूखने लगा। काग उड़ावत= व्यर्थ का काम करते।  
भुजा पिरानी= वृद्ध होना। यह कथा= जीवन लीला।  
सिरानी= समाप्त होना।

**भावार्थ**—भँवरे उड़ गये और बगुले आकर बैठ  
गये; अर्थात् काले बाल सफेद हो गये और देखते-देखते  
यों ही रात-दिन बीते चले जा रहे हैं ॥ 1॥ यह मूढ़ मानव  
भावी कर्म-फल-भोगों की दुखद संभावना को लेकर थर-  
थर कांपता है और सोचता है कि दैव मेरे विषय में पता  
नहीं क्या करेगा ॥ 2॥ मिट्टी के कच्चे बरतन में देर तक  
पानी नहीं टिक सकता; अर्थात् इस क्षणभंगुर शरीर में प्राण  
ज्यादा दिन नहीं रुक सकते। एक दिन चेतन हंस इस  
काया को छोड़कर उड़ जाता है और यह मुरझा जाती  
है ॥ 3॥ सद्गुरु कहते हैं कि आदमी जीवनभर विषय-  
सेवन एवं व्यर्थ क्रिया करते-करते बूढ़ा हो जाता है, और  
इसी में उसकी जीवन-लीला समाप्त हो जाती है ॥ 4॥

**व्याख्या**—“भँवर उड़े बग बैठे आई।” यहां भँवर  
तथा बग रूपक मात्र हैं। भँवरे काले तथा बगुले सफेद  
होते हैं। यहां भँवरे काले बाल तथा बगुले सफेद बाल हैं।  
मनुष्य के जीवन के आरम्भ से उसके बाल काले होते हैं।  
जवानी तक प्रायः काले ही रहते हैं। परन्तु कुछ दिनों में  
उजले होने लगते हैं। शौकीन मनुष्यों की दाढ़ी-मूँछ में  
जब कहीं-कहीं बाल उजले होने लगते हैं तब वे उन्हें  
उखाड़ देते हैं और जब कई बाल उजले होने लगते हैं तब  
वे उन्हें कैंची से काटते हैं, जब अधिक बाल उजले होने

लगते हैं तब उनमें से कुछ लोग औषध का प्रयोग करते हैं  
जिससे बाल काले दिखें। हम कृत्रिम रूप से बालों को  
भले ही काले बनाये रखें, परन्तु अवस्था के प्रवाह को  
नहीं रोक सकते। शरीर तो जवानी से बुढ़ापा की ओर  
निरंतर जायेगा ही। दिन बीतने के बाद रात तथा रात बीतने  
के बाद दिन बीतते हैं। इस रफ्तार को कौन रोक सकता है  
“सुबह होती है, शाम होती है। उम्र यों ही तमाम होती  
है।” रात और दिन रूपी काले और सफेद चूहे हमारे  
जीवन-वृक्ष को निरंतर काटते हैं। हर प्राणी हर समय मौत  
की तरफ निरंतर खिसक रहा है। इस प्रवाह को रोकने  
वाला आज तक संसार में कोई नहीं हुआ। और तथ्य के  
अनुसार अनुमान होता है कि आगे भी इसे कोई रोक नहीं  
सकता।

“हल-हल काँपे बाला जीव” यह अबोध आदमी  
थर-थर कांपता है कि पता नहीं दैव हमारी क्या दशा  
करेगा! संसार में सर्वत्र एक कारण-कार्य की व्यवस्था  
है। मनुष्य के जीवन में भी यह व्यवस्था है। इस व्यवस्था  
का कोई उल्लंघन नहीं कर सकता। जीव जो कुछ भी  
करता है उसका फल उसे भोगना पड़ता है। डरने और  
कांपने से फल-भोग नहीं टल सकते। दुखों से बचने का  
रास्ता सच्चरित्रता है। दूसरों को दुख देने से बचो। ध्यान  
रहे, तुम दूसरों को असुविधा तथा दुख पहुंचाकर सुखी  
नहीं हो सकते हो। यदि तुम दूसरे सबका हितचिंतन करते  
हो और यथासाध्य हित करते हो तो तुम स्वयं सब समय  
सुखी रहोगे। जो लोग दूसरों की सेवा करके, दूसरों का  
हित करके यह कहते हैं कि जिसका मैंने हित किया वह  
मेरा एहसान नहीं माना, किन्तु मेरे उलटा किया, तथा इस  
बात को लेकर बहुत पीड़ित रहते हैं और कहते हैं कि मैं  
तो परोपकार करके भी सुखी नहीं हूँ, तो ऐसे लोगों द्वारा  
की गयी पर-सेवा तथा परोपकार के मूल में शुद्ध निष्काम  
भाव नहीं है। जो पर-सेवा तथा परोपकार करके उसके  
बदले में सहानुभूति, प्रशंसा तथा कुछ भी चाहता है वह  
सुखी नहीं हो सकता। आदमी तभी दुखों से मुक्त तथा  
सुखी हो सकता है जब वह मन, वाणी तथा कर्मों से दूसरों  
को पीड़ा न दे, प्रत्युत निष्कामभाव से सुख देने का प्रयास  
करे। परन्तु आदमी ऐसा न कर अपने जीवन में दूसरे का  
अहित करता है और स्वयं में इन्द्रिय-लंपट रहता है।  
इसलिए उसका मन सदैव अशांत रहता है। ऐसा आदमी



जितना बूढ़ा होता है उतना उद्विग्न तथा अपने भावी संभावित दुखों के लिए आशंकित होता है। जिसने अपने आप को सब ओर से अनासक्त तथा आत्मस्थ नहीं बनाया उसकी नींव बालू-जैसी रहती है, उसके मन में सदैव भय सवार रहता है।

“काँचे बासन टिके न पानी, उड़ि गये हंस काया कुम्हिलानी।” सद्गुरु यहां जीवन की क्षणभंगुरता के लिए बड़ा सटीक उदाहरण देते हैं। मिट्टी का कच्चा घड़ा हो, यदि उसमें पानी भर दिया जाये तो आप जानते हैं कि उस घड़े के टूटने में देरी नहीं लगेगी। यह शरीर ऐसे ही दुर्बल है। इसके विनशते देरी नहीं लगती। किसी समय विश्वास नहीं किया जा सकता कि यह शरीर कब तक है। वायुयान, ट्रेन, बस, कार, स्कूटर, साइकिल आदि से यात्रा करते, पैदल चलते, बिस्तर पर लेटे, कब यह कच्चा साज बिखर जायेगा, इसे कोई नहीं जानता। जहां जीव निकला, यह शरीर कितना ही सुन्दर, सुगठित, युवक रहा हो तुरंत कुम्हला जाता है। आदमी अपनी देह का कितना अहंकार रखता है और इस पर यह कितना आशा का महल बनाता है, परन्तु वह सब क्षण में भहरा पड़ता है।

“काग उड़ावत भुजा पिरानी, कहहिं कबीर यह कथा सिरानी।” यहां इस पंक्ति का जो प्रथम अंश है “काग उड़ावत भुजा पिरानी” एक मुहावरा जैसा है। काग उड़ावत का अर्थ है व्यर्थ काम करना और भुजा पिरानी का अर्थ है शरीर वृद्ध हो जाना। जैसे कोई आदमी घर का कोई सार्थक काम न करे, वह आलसी हो और दिनभर दरवाजे पर बैठा ढेला लेकर कौए उड़ाता रहे और इसी क्रिया में बूढ़ा हो जाये, तो उसका जीवन व्यर्थ ही बीता हुआ माना जायेगा। यहां इन्द्रिय और मन को जीवनभर विषयों में दौड़ाना यही मानो कौआ उड़ाते जीवन को थकाना है। आदमी जीवन को मन और इंद्रियों की लम्पटता में ही बिता देता है। जो विषयों में क्षीण होते-होते बूढ़ा होता है, उसके जीवन में शांति कहां से आयेगी? कौए जैसे मलिन वस्तुओं को खाते, कर्कश आवाज करते तथा सशंक बने जीवन बिता देते हैं वैसे ये प्रपंची जीव अपने मन, वाणी तथा कर्मों से लम्पट बने जीवन खो देते हैं। इस प्रकार यह जीवन-लीला यों ही समाप्त हो जाती है।

## सन्त चरनदास साहेब की बानी

गुरु समान तिहुँ लोक में, और न दीखै कोय ।  
 नाम लिये पातक नसै, ध्यान किये हरि होय ॥  
 गुरु ही के परताप सँ, मिटे जगत की ब्याध ।  
 राग द्वेष दुख न रहै, उपजै प्रेम अगाध ॥  
 गुरु के चरनन में धरो, चित बुध मन हँकार ।  
 जब कुछ आपा ना रहे, उतरै सबहीं पार ॥  
 बलिहारी गुरु आपने, तन मन सदकै जाँव ।  
 जीव ब्रह्म छिन में कियो, पाई भूली ठाँव ॥  
 जब सँ गुरु किरपा करी, दरसन दीन्हें मोहिं ।  
 रोम रोम में वै रमे, चरनदास नहिं कोय ॥  
 जाति बरन कुल मन गया, गया देह अभिमान ।  
 अपने मुख सँ क्या कहूँ, जगही करै बखान ॥

## सन्त रविदास साहेब की बानी

हरि सा हीरा छाड़ि कै, करै आन की आस ।  
 ते नर जमपुर जाहिंगे, सत भाषै रैदास ॥  
 अंतरगति राचैं नहीं, बाहर कथैं उदास ।  
 ते नर जमपुर जाहिंगे, सत भाषै रैदास ॥  
 रैदास कहे जाके हृदै, रहै रैन दिन राम ।  
 सो भगता भगवन्त सम, क्रोध न ब्यापै काम ॥  
 जो देखे घिन ऊपजै, नरक कुंड में बास ।  
 प्रेम भगति सों ऊधरें, प्रगटत जन रैदास ॥  
 रैदास तू कावँच फली, तुझै न छीपै कोइ ।  
 तैं निज नावँ न जानिया, भला कहाँ ते होइ ॥  
 रैदास राति न सोइये, दिवस न करिये स्वाद ।  
 अह-निसि हरिजी सुमिरिये, छाड़ि सकल प्रतिवाद ॥

## मौत की देवी कोरोना

लेखक—दिनेन्द्र दास

कोरोना...कोरोना...कोरोना...का पूरी दुनिया में कोहराम मचा हुआ है। अपने घर पर ही रहना है, कहीं आना-जाना नहीं है। लोगों से सम्पर्क नहीं करना है। भीड़-भाड़ में बिल्कुल नहीं जाना है। गेट के सामने ताला जड़ दो। स्कूल, कॉलेज, धर्मशाला, सिनेमाघर, माल, होटल, कार्यालय, फैक्ट्रीज, दुकान, बाजार और अन्य सभी प्रतिष्ठित स्थान बन्द। यहां तक बस, ट्रेन, हवाई जहाज के पहिये थम गये। सरकार द्वारा जनता कर्फ्यू, लॉक डाउन फिर अनलॉक लगाया गया है। सबसे बचकर रहो, नहीं तो पता नहीं कोरोना कब धर दबोचेगी।

मैंने कोरोना से पूछा—“हे मौत की देवी कोरोना, तुम सुरसा की तरह मुंह बाये इस संसार में क्यों घूम रही हो। तुम सामान्य रूप से आती तो हम सब लोग तुम्हारा आदर करते। अबीर, चन्दन, फूल-मालाएं, मखमली कपड़े चढ़ाते। तुम्हारी परिक्रमा कर आरती उतारते और तुम्हें ढोल, झांझ, मजीरा, बैड बाजा के साथ ससम्मान तुम्हारे मुक्तिधाम तक पहुंचाते, पर तुम बिना सूचना दिये, बिना बुलाए इस दुनिया में चंडी बनकर पूरी दुनिया को संहार करने आ गयी।”

कोरोना ने कहा—“महाशय जी! मैं बिना बुलाये किसी के पास नहीं जाती हूं। मुझे तो बुलाया गया है।”

मैंने हंसते हुए कोरोना से कहा—“कैसी पगली जैसी बातें करती हो, भला तुम्हें बुलाकर कौन अपने गले में फांसी का फंदा पहनेगा?”

कोरोना ने कहा—“मैं सच कहूं तो देश-विदेश के बुद्धिजीवी वैज्ञानिकों ने, उद्योगपतियों ने, राजनेताओं ने, किसानों एवं जनता ने मुझे बुलाया है। परंतु घबराइये नहीं महाराज जी! मैं आप जैसे लोगों के पास नहीं जाती हूं, जो विवेकी सज्जन-भक्त टकसार पूर्वक जीवन जीते हैं, अर्थात् जिनका खान-पान, रहन-सहन, आचार-विचार शुद्ध एवं सात्त्विक है, जो साफ-सफाई का ध्यान

रखते हैं और कुछ खाने या कहीं से आने पर बराबर हाथ, पैर, मुख, चेहरे को धोते हैं। नित्य साबुन से स्नान करते हैं, प्रतिदिन घर-आंगन, कपड़े की सफाई करते हैं। स्वच्छता-सफाई जिनके जीवन के अंग ही बन गये हैं, मैं उनके पास नहीं जाती हूं, पर हां, अगर असावधान हुए तो मैं किसी को नहीं छोड़ती हूं।”

मेरी और कोरोना से बातचीत चल ही रही थी तभी वहां कुछ वैज्ञानिक, उद्योगपति, राजनेता, किसान और आम जनता के लोग आ गये थे। कोरोना की बात सुनकर वैज्ञानिकों ने कोरोना से पूछा—“हमने जनता को सुख-सुविधा देने के लिए विभिन्न वस्तुएं तैयार की हैं फिर तुम हमें बदनाम क्यों कर रही हो?”

कोरोना ने कहा—“आपने जीवन जीने की सुख-सुविधाएं दिये हैं, इसमें मुझे कोई एतराज नहीं है, पर आप इतने परमाणु बम, मिसाइलें बना चुके हैं कि पृथ्वी का सैकड़ों बार संहार किया जा सकता है। हिरोशिमा और नागासाकी में गिराया गया बम आप ही ने बनाया था न। जिसका परिणाम देख चुके हैं। आपने विस्फोटक पदार्थों द्वारा पूरे ब्रह्माण्ड को दूषित किया है फिर मेरे जैसे सूक्ष्म परजीवी के आने पर घबराते क्यों हैं, मुझसे मुकाबला क्यों नहीं करते। करो न मुझ कोरोना से लड़ाई...अपने हाइड्रोजन बम, परमाणु बम, न्यूक्लीयर बम एवं मिसाइलों की शक्ति दिखाओ न...। मेरी शक्ति से चीन अब मुंह दिखाने लायक नहीं रहा। अपने को विकसित मानने वाला दुनिया का सम्राट देश अमेरिका रो रहा है। इटली नष्ट होने के कगार में आ गयी है। ईरान, इराक, टर्की, फ्रांस, जर्मनी, भारत आदि सैकड़ों देश मेरे आगे घुटने टेक रहे हैं। अब बताइये आपने भयंकर विनाश की लीला दिखाया है कि नहीं।”

सभी वैज्ञानिक कोराना की बातें स्वीकारते हुए शांत रह गये।

उद्योगपतियों ने कोरोना से कहा—“हमने उद्योग-धन्धे, फैक्ट्री लगाकर विभिन्न वस्तुओं का उत्पादन

किया है फिर हमें क्यों दोष देती हो।”

“तुम्हें तो सिर्फ धन चाहिए। धन कमाने के लोभ में जगह-जगह फैक्ट्रियां लगाकर वातावरण को प्रदूषित करने का काम आप ही ने किया है। अब मेरे आने से मजदूर फैक्ट्री छोड़कर भाग खड़े हुए हैं तो अब घबराते क्यों हो। आज नहीं तो कल मैं तुम्हारे ऊपर भी आऊंगी।”

कोरोना की बातें सुनकर उद्योगपति भी चुप हो गये।

राजनेताओं ने कहा—“कोरोना, हम लोग तो कोई अपराध नहीं किये हैं फिर हमारा नाम क्यों लेती हो कि इसने बुलाया है।”

कोरोना ने कहा—“आपको तो कुर्सी प्रिय है न! कुर्सी मिलने के प्रलोभन में पड़कर असम्भव वायदे करते हैं और वायदे निभाने के लिए उलटा-सीधा काम करते हैं। जनता की सेवा तो कोसों दूर हो जाती है, अपनी ही सेवा करवाते हैं। देश का पैसा पानी की तरह बहाते हैं। दूसरे देशों से लड़ने के लिए आपने ही तैयारी की है। बताइये आपने कितने बम, मिसाइलें, हथियार बनाने का वैज्ञानिकों को आर्डर दिया है और कितने विदेशों से बम एवं मिसाइलें खरीदी है और कितने बम एवं मिसाइलें छोड़ी हैं, जिससे पूरा ब्रह्माण्ड कांप उठा है, वायु दूषित हुआ है, जंगल नष्ट हुए हैं। कितने जंगलों को कटवाया है जिसकी वजह से प्रकृति में हलचल हुई है। प्राकृतिक नियमों में असन्तुलन होने लगा है। कहीं अत्यधिक बाढ़ तो कहीं भयंकर अकाल, सर्दियाँ, गरमी में भी असन्तुलन, बताइये इनका दोषी कौन है?”

कोरोना की बातों से राजनेता एक किनारे हो गये।

कोरोना से किसानों ने कहा—“हम सब खेती करते हैं। फसल उत्पादन करते हैं जिससे जनता को अन्न, फल, सब्जी, मेवा आदि मिलता है इसमें हमारा क्या दोष है?”

कोरोना बोली—“फसल उत्पादन करना गलत नहीं है। आप अन्नदाता हैं, दुनिया के पालक हैं। आप अन्न नहीं पैदा करेंगे तो जनता भूखों मर जायेगी पर अधिक उत्पादन के लोभ में पड़कर रासायनिक खाद, कीटनाशक दवाई एवं टानिक डालकर पृथ्वी तत्त्व को

खराब करते हैं जिसके कारण अन्न, फल, फूल, सब्जियों में जहर घुल जाता है। आप परंपरागत खेती न कर आधुनिक तरीकों से खेती करते हैं। गाय, बैल, भैंस से जो गोबर मिलता था जिससे जैविक खाद बनाया जाता था उसकी अनदेखी की है। आजकल किसान एवं जनता दूध, दही, मक्खन, घी एवं दूध, घी से बनी मिठाई अथवा पकवान खाना चाहते हैं, गौ माता के पंचामृत एवं अन्य औषधी सेवन करना चाहते हैं परंतु गौ माता की सेवा करने से कतराते हैं। इतना ही नहीं बुढ़ापा में उनको कत्लखाना भेजते हैं। इस महापाप का परिणाम आप नहीं भोगेंगे तो और कौन भोगेगा। आप (किसान) दूषित अन्न, फल, सब्जी, दूध-दही खाकर स्वयं बीमार रहते हैं और दूसरों को भी अस्वस्थ करते हैं। शरीर कमजोर होने लगता है, बीमारियां सवार होती हैं, वहीं तो मेरा आगमन होता है। वहीं जब मैं कोरोना हावी होती हूँ तो आप चिल्लाते क्यों हो।”

कोरोना जनता की ओर इशारा करती हुई बोली—“आप स्वयं अनुशासित नहीं रहते, पान, गुटखा, तम्बाकू बीड़ी, सिगरेट, शराब, हेरोईन, चरस, गांजा आदि खाते-पीते हो, यहां तक सार्वजनिक स्थल, धर्मशाला, सिनेमाघर, स्कूल, कॉलेज, कार्यालय, अस्पताल की दीवारें पान की पीक एवं खैनी के रंगों से रंगी रहती हैं। बाथरूम एवं शौचालय में ना जाकर टट्टी-पेशाब जहां-तहां करते हैं, मानो गंदगी फैलाना आप लोगों की आदत हो गयी है। याद रखना, वही गंदगी मेरा स्थान है। मैं वहीं जन्म लेती हूँ, वहीं मेरा पालन-पोषण होता है और जब युवती होती हूँ तब वहीं से संक्रमण वायरस बनकर फैलती हूँ। आप लोगों का खान-पान में बिल्कुल सुधार नहीं है। अंकुरित अन्न, फल, मेवा, साग-सब्जियां आदि को नहीं खाकर, शाकाहार छोड़कर मांसाहार ग्रहण करते हो। मांस-मछली, भेड़, बकरी, ऊंट, गाय, भैंसा, चूहा, बिल्ली, कुत्ता, बन्दर, सांप, सियार, बिच्छू, मेंढक, केकड़ा, घोंघा, सीपी, चमगादड़, कीड़े-मकोड़े एवं अगणित प्राणियों को मारकर खानेवाले पापी इंसान! अब क्यों घबराता है। जो काम किया है उसका फल एक न एक दिन तुम्हें भोगना ही पड़ेगा। मैं (कोरोना) तुम पर करुणा नहीं कर सकती। मैं मांसाहारी लोगों के

ऊपर ज्यादा हावी होती हूँ। चीन वाले चमगादड़, सांप एवं अन्य जीवों को मारकर नहीं खाते तो मैं उनके ऊपर सवार क्यों होती! मैं पूरी दुनिया की जनता में मौत की खौफ पैदा करने के लिए यात्राएं कर रही हूँ।”

अंत में वैज्ञानिकों, उद्योगपतियों, राजनेताओं, किसानों एवं जनता ने अपनी-अपनी गलतियां स्वीकार करते हुए एक स्वर में कहा—कोरोना तुम सही कहती हो, हमसे कहीं-न-कहीं चूक हुई है। हे मौत की देवी कोरोना! हम दोबारा ऐसी गलती नहीं करेंगे जिससे प्राकृतिक शक्तियों का दोहन एवं दुरुपयोग हो। मौत की देवी कोरोना! हमें क्षमा करें और जीने का हक दे।

मेरी, जनता और कोरोना की बातचीत चल ही रही थी उसी समय सभी मानवेतर मूक प्राणी आगे बढ़कर एक स्वर में कहने लगे—अच्छा हुआ कोरोना! आप भूलोक में आ गयी, नहीं तो हम सब प्राणी त्राहि-त्राहि हो गये थे। बुद्धिजीवी कहे जाने वाले मानव ने हमारा जीना हराम कर दिया था। आपके आने से हम सब प्राणी सुकून महसूस कर रहे हैं और स्वतन्त्रतापूर्वक सुरक्षित जीवन जी रहे हैं। आपने ही हमें जीने का हक दिया है। आपका लाख-लाख शुक्रिया ! आपके आने से सब मानव छटपटा रहे हैं। अब पता चला!! जब हम छटपटाते थे तब ये मानव कितना खुश होते थे।

गाय, सूअर, भेड़, मुर्गी कहने लगे “हमें तो गर्म पानी डालकर इन बेरहम इंसानों ने हमारे खाल को खींचा है। इन इंसानों के सामने हम तड़प-तड़प कर मरे हैं।”

मछली बोली—“मैं तो सदैव पानी के विपरीत दिशा में चलती हूँ, इसके बावजूद भी मनुष्य मुझे चारे का लोभ दिखाकर बंसी में फंसाते हैं और बड़ी-बड़ी जालों से मुझे पकड़ते हैं।”

चमगादड़ों ने कहा—“पता नहीं, किस जन्म के पाप के परिणामस्वरूप भगवान ने हमें उलटा लटका दिया है, फिर भी बेरहम मानव ने हम पर जरा भी रहम नहीं किया और हमारे मुट्टी-भर मांस के लिए हमें मारा है। हमें मार कर नहीं खाते तो हम कोरोना बनकर आपके (मानव) के ऊपर आते क्यों!”

सांप, बिच्छू, कीड़े-मकोड़े जैसे अन्य जीवधारी कहने लगे “हमने तो दोपाया प्राणियों से सदैव दूरी बनाये रखा, कभी-कभार मुठभेड़ में किसी को काटा एवं डंक मारा है, लेकिन इन मनुष्यों ने हमारी असंख्य प्रजातियों को समूल नष्ट किया है। इतना ही नहीं हमारे जैसे असंख्य प्राणियों को अपने जाल एवं पिंजरे में कैदकर नचाया है।”

कोरोना ने इंसानों की ओर इशारा करते हुए कहा—“सुन लिये इन बेबस, शक्तिहीन एवं मूक प्राणियों की बात...!”

इंसानों ने कोरोना के सामने घुटने टेककर क्षमा याचना करते हुए कहा—“वास्तव में हमने जीभ-स्वाद एवं प्रलोभन में पड़कर अविवेक का काम किया है। विभिन्न जीवों को सताया है एवं मारकर खाया है। अब हमें क्षमा कर दीजिए। आज से ऐसी गलती नहीं करेंगे। हे मौत की देवी कोरोना! अबकी बार हमें बचा लीजिए!”

कोरोना ने इंसानों से कहा—“हे बुद्धिजीवी महामानव! आप शुद्ध शाकाहारी बनो, सावधानी बरतो, डॉक्टरों एवं प्रशासन का कहना मानो और सरकार द्वारा चलाये गये स्वच्छता अभियान का मुस्तैदी से पालन करो, तभी तुम मुझ कोरोना से बच पाओगे। नहीं तो...सावधानी हटी, तो दुर्घटना घटी।

- ❖ आत्मज्ञान ही सच्चा ज्ञान है। राग-द्वेष से मुक्ति ही मोक्ष है और इसका साधन है अहिंसा और सत्यतापूर्ण आचरण।
- ❖ जो निन्दा से डरता है और प्रशंसा का भूखा है वह कभी कोई बड़ा काम नहीं कर सकता।
- ❖ अपने विरोधियों के प्रति अधिक से अधिक दया और प्रेम का व्यवहार करना ही सच्ची वीरता है।
- ❖ सबसे हारे बिना, सबसे छोटा और नीचा हुए बिना एवं अपने अहंकार को पूरा मारे बिना कोई गहरी शान्ति नहीं पा सकता।

## साधक और उसकी रहनी

दुनिया में अनेक मत-पंथ-संप्रदाय हैं। सबके अपने विश्वास, मान्यता, कर्मकांड एवं पूजा-पाठ आदि के नियम हैं। इनमें कभी न एकरूपता रही है और होगी, परन्तु किसी भी सरणी का साधक हो सबके लिए मन-इन्द्रियों पर संयम, यथाप्राप्त में सन्तोष, साधु-सदाचार के नियमों का पालन, विवेक-वैराग्यवान संत-गुरुजनों की शरणागति एवं संगति परमावश्यक है, तभी वह अपने लक्ष्य तक पहुंच सकता है। इस सन्दर्भ में धम्मपद में तथागत बुद्ध का एक वचन है—

*तत्रायमादि भवति इध पञ्जस्स भिक्खुनो।*

*इन्द्रियगुत्ती सन्तुट्ठी पातिमोक्खे च संवरो॥*

*मित्ते भजस्सु कल्याणे सुद्धाजीवे अतन्दिते॥*

(धम्मपदं, भिक्खुवग्गो-16)

जो प्रज्ञावान भिक्षु-साधक है, कल्याण इच्छुक है उसे शुरू से ही क्या काम करना चाहिए? तथागत कहते हैं “इन्द्रियगुत्ती” इन्द्रियों का संयम। दूसरा काम ‘संतुट्ठी’ जो प्राप्त हो उसमें संतोष। ‘पातिमोक्खे च संवरो’ साधु नियमों का पालन। ‘मित्ते भजस्सु कल्याणे’ जो कल्याण मित्र हैं, जो कल्याण की तरफ प्रेरणा देने वाले हैं, जिनकी संगत से कल्याण का आदर्श मिलता है और प्रेरणा मिलती है ऐसे जो संत हैं उनसे मित्रता एवं सेवा का भाव। कल्याण मित्र जो संत हैं उनकी पहचान क्या है? वे ‘सुद्धाजीवे अतन्दिते’ होते हैं। शुद्धतापूर्वक जीवन निर्वाह लेने वाले और ‘अतंद्रित’ अर्थात् सब समय सावधान रहने वाले होते हैं।

जो साधक साधना पथ में चलना चाहता है या चल रहा है, जिसे आत्मशांति या दुखनिवृत्ति प्रिय है, उसे करना क्या चाहिए? समाज में रहकर हो या अकेले रहकर हो, आश्रम में रहकर हो या विचरण में रहकर हो सब जगह उसका मुख्य काम क्या है? आश्रम में रहते हैं तो वहां के व्यावहारिक काम अलग होते हैं। विचरण में रहते हैं तो वहां के व्यावहारिक काम अलग होते हैं। विचरण में रहते हैं तो भक्तों से अधिक संपर्क

पड़ता है। भक्त लोग जब मिलते हैं तो कुछ कहना-सुनना पड़ता है, कुछ समझाना पड़ता है, कभी प्रवचन करना पड़ता है। आश्रम में प्रवचन करने का अवसर कम मिलता है, भक्त लोग कम आते हैं उनसे मिलना-जुलना कम होता है, लेकिन आश्रम है तो वहां का अपना अलग नियम है, सेवा कार्य वगैरह है उसे करना होता है।

आश्रम में रहकर आश्रम के नियमों का पालन करते हुए, सेवा का काम करते हुए, बाहर रहकर भक्तों से मिलते-जुलते हुए और उपदेश-प्रवचन यह सब करते हुए उनका अपने लिए मुख्य काम क्या है? तथागत बुद्ध कहते हैं ‘इन्द्रियगुत्ती’ इन्द्रियों पर संयम रखना।

कोई भी साधक हो यदि वह इन्द्रियों का संयम नहीं करता है तो वह साधक कैसा? साधक का पहला लक्षण है—इन्द्रियों पर संयम। जिसकी इन्द्रियां भोगों के लिए निरंतर लालायित रहती हैं और जो अपनी इन्द्रियों से भोगों को भोगकर तृप्त होना चाहता है वह साधक कैसे होगा? वह तो अपने को सब तरफ से बेच डालेगा, अत्यंत गुलाम बन जायेगा। इन्द्रियलम्पट व्यक्ति साधना तो क्या व्यवहार का काम भी ठीक से नहीं कर पाता। जो अत्यंत विषयलम्पट, इन्द्रियलंपट हो जाता है ऐसा व्यक्ति अपने परिवार वालों, मित्रों, सगे-संबंधियों की दृष्टि से भी गिर जाता है। भीतर-बाहर से वह अशांत रहता है। हर समय पीड़ित, दुखी और चिंतित बना रहता है, तो साधना वह कर ही क्या पायेगा?

पहला लक्षण है ‘इन्द्रियगुत्ती’ अर्थात् सभी इन्द्रियों का संयम। इसलिए भिक्खुवग्ग के शुरू में ही कहा गया है—

*चक्खुना संवरो साधु साधु सोतेन संवरो।*

*घाणेन संवरो साधु साधु जिह्वाय संवरो॥*

*कायेन संवरो साधु साधु वाचाय संवरो।*

मनसा संवरो साधु साधु सब्बत्थ संवरो॥  
सब्बत्थ संवुतो भिक्खू सब्ब दुक्खा पमुच्चति॥

(धम्मपदं, भिक्खुवग्गो 1-2)

अर्थात् आंख, नाक, कान, जीभ, वाणी, मन आदि सब पर संयम जरूरी है। 'साधु सब्बत्थ संवरो' सब कुछ का संयम अर्थात् खाने में, बोलने में, सोने-जागने में, काम करने में, व्यवहार करने में, मिलने-जुलने में जो संयम रखता है वही साधना का काम ठीक ढंग से कर सकता है। मन सहित सभी इन्द्रियों पर संयम हो जाने पर सारे दुखों से छुटकारा मिल जाता है।

खाने-पीने, सोने-जागने में संयम नहीं है, बात-व्यवहार करने में संयम नहीं है, अपनी इन्द्रियों पर संयम नहीं है तो साधना कैसे होगी? जो सुख से रहना चाहता है, शांति से रहना चाहता है और साथ-साथ जो समाज-सेवा का काम करना चाहता है, उसे अपने आपको सब तरफ से समेट करके रखना होगा, अपनी अनेक इच्छाओं पर उसे संयम करना होगा, तभी वह लोककल्याण और आत्मकल्याण का काम कर सकेगा।

मार्क्स ने एक जगह लिखा है कि जो व्यक्ति समाज-सेवा के लिए जीवन लगाना चाहता है, अपने आपको समाज-सेवा में अर्पित करना चाहता है उसे वैवाहिक झंझट में नहीं पड़ना चाहिए। नहीं तो परिवार की चिंता में समाज की सेवा ठीक से नहीं कर पायेगा। इसी प्रकार अन्य जगह के बारे में भी सोच सकते हैं।

किसी भी चीज में असंयम है तो समाज-सेवा ठीक से नहीं बनेगी और साधना तो बन ही नहीं सकती है। इसलिए इन्द्रियों पर संयम अत्यंत आवश्यक है। संयम का अर्थ है—जीवन निर्वाह के लिए इन्द्रियों का प्रयोग करते हुए विकारी विषयों से अपने आपको बचाये रखना। ऐसा तो नहीं हो सकता है कि आंख, नाक, कान, जीभ, त्वचा, हाथ, पैर, मुखादि जो इन्द्रियां हैं इनका प्रयोग ही न करें। इनको बिल्कुल बंद ही रख दें। जब तक जीवन है तब तक इन्द्रियों का प्रयोग तो करना ही होगा। लेकिन प्रयोग करते हुए यह दृष्टि रखें कि जो कुछ भी विषय ग्रहण करते हैं वह केवल जीवन निर्वाह के लिए हो, मन को विकारी बनाने वाला न हो।

इसीलिए कहा गया है 'आहार शुद्धौ सत्त्वशुद्धिः' आहार जब शुद्ध होता है तब बुद्धि शुद्ध होती है। यहां आहार से मतलब केवल भोजन से नहीं है जो मुख से खाते हैं किन्तु पांच ज्ञान इन्द्रियों और मन से जो कुछ भी हम ग्रहण करते हैं, देखते, सुनते, सोचते आदि हैं ये सब आहार हैं। जब तक ये शुद्ध नहीं होंगे तब तक सत्त्व (अंतःकरण) शुद्ध नहीं हो सकता। जब तक चित्त शुद्ध नहीं होगा तब तक स्मृति स्थिर नहीं हो सकती।

यहां शुद्ध से तात्पर्य है संयमित ढंग से ग्रहण करना। संयमित ढंग से जो ग्रहण किया जायेगा वह शुद्ध होगा ही।

अपनी शांति के लिए हमारा पहला काम है कि अपने आप पर हर प्रकार से संयम रखें। जो संयमित ढंग से निर्वाह करेगा, अपने मन-इन्द्रियों पर संयम रखेगा, चाहे वह आश्रम में रहे चाहे बाहर रहे, भटकने का चांस नहीं आयेगा, फिर वह विषयों की तरफ पतित नहीं होगा।

दूसरी बात है 'संतुष्टी' अर्थात् संतोष। हर समय मन में संतोष रखना। अभाव की अनुभूति हर समय आदमी को पीड़ित करती रहती है। हर समय आदमी क्यों जलता है? क्यों रात-दिन दौड़ता रहता है? यह नहीं मिला, वह नहीं मिला ऐसा सोच-सोचकर आदमी रात-दिन दौड़ता रहता है। अपने को जो मिले, समझे कि यह बहुत है। इतने की भी हमें आवश्यकता नहीं है। संतुष्ट वही हो सकता है जो थोड़ी वस्तुओं में गुजर करना जानता है और जिसका अपने आप पर संयम है। किन्तु जिसका अपने आप पर संयम नहीं है और जिसका मन तमाम वस्तुओं की तरफ ललचाता रहता है वह संतुष्ट नहीं हो सकता।

यह न देखे कि दूसरों के पास क्या है। दूसरों की वस्तुओं को देखने वाला व्यक्ति कभी संतुष्ट नहीं हो सकता है। उसके लिए सद्गुरु कबीर साहेब ने कहा है—

परै न पूरि दिनहु दिन छीना, तहाँ जाय जहाँ अंग बिहना।

(बीजक, रमैनी-38)

आदमी को चाहे जितना मिल जाये उसे पूरा नहीं पड़ता है। मन को लगता है कि जो अभी हमें मिला है वह बहुत कम मिला है। और आदमी दिनोदिन भीतर ही भीतर कमजोर होता चला जाता है। क्षीण होता चला जाता है। भीतर से खाली होता चला जाता है। इसलिए तथागत बुद्ध ने भिक्खु वग में यह भी कहा है—

*अप्यलाभो' पि चे भिक्खु सलाभं नातिमञ्जति।*

*तं वे देवा पसंसन्ति सुद्धाजीवि अतन्दितं॥*

(धम्मपदं, भिक्खुवगो 7)

अर्थात् दूसरों को जो मिला हुआ है उसकी चाहना न करे। बल्कि अपने को जितना मिल जाये उसमें संतोष रखे। उसमें तृप्त रहे। साधुओं में भी बहुत जगह ऐसे होता है। वे यह नहीं देखते कि मुझे क्या मिला है किन्तु वे यह देखते हैं कि दूसरों को क्या मिल रहा है। कितने साधु तो मेला-भण्डारा में ही लंकाकाण्ड शुरू कर देते हैं। ऐसा लगता है कि वे पूजा लेने के लिए ही साधु हुए हैं। दूसरे ऐसे लोग भी हैं जो कहते हैं कि बाबू जी, हम बीस-पचीस साल से साधु हैं लेकिन हमको पूजा कम दी गयी और पांच साल के साधु को हमसे ज्यादा पूजा दी गयी। ऐसे लोगों को क्या कहा जाये।

जो संतुष्ट नहीं रह सकता है वह साधना नहीं कर सकता, साधु मार्ग में चल नहीं सकता क्योंकि उसका मन दुनिया की तरफ दौड़ता रहेगा।

असंतोष यदि करना हो तो एक क्षेत्र में किया जा सकता है। वह क्षेत्र सद्गुण-सदाचार और संयम का क्षेत्र है। हम दूसरों को देखें कि अमुक व्यक्ति ऐसा सद्गुणी, सदाचारी, सहनशील है, साधनापरायण है, वैराग्यवान है, इस प्रकार से वे अपने मन को मारकर रहते हैं, शांत करके रहते हैं। मैं वैसा क्यों नहीं बन पाता? मुझे वैसे बनना है। यदि इस ढंग का असंतोष हो तो बेड़ा ही पार हो जाये। लेकिन ऐसा कहाँ कर पाते हैं।

किसी भी निर्मल जीवन, वैराग्यवान संत की हम बाहरी विभूति को देखते हैं, उनके बाहरी ऐश्वर्य को देखते हैं कि उनके कितने शिष्य हैं, कितना बड़ा उनका

आश्रम है, वे बाहर जाते हैं तो कैसे उनकी आवभगत होती है, कैसा पूजा-सम्मान मिलता है, कैसे भक्त लोग उनके पास आकर भेंट देते हैं। यह देखते हैं और सोचते हैं कि मुझे भी ऐसे मिलता तो कितना बढ़िया होता।

लेकिन यह नहीं देखते कि उनका जीवन कितना निर्मल है, कितना वैराग्य और त्याग से परिपूर्ण है, कितना उन्होंने अपने आप को संयमित और संतुलित किया हुआ है। उनको जो इतनी पूजा-प्रतिष्ठा मिल रही है वह उनके त्याग-तप और वैराग्य के प्रभाव से ही मिल रही है। उनके अंदर कोई कामना नहीं है, उनका मन निष्काम है। मन की निष्कामता को देख नहीं पाते इसलिए वैसा बनने के लिए मन में प्रेरणा नहीं होती, भाव नहीं होता। बाहरी ऐश्वर्य को देख लेते हैं और उसके लिए कामना करते रह जाते हैं और रात-दिन जलते रहते हैं।

किसी वस्तु की कामना करना अपने आपको ही तो जलाना है। यदि संतोष है तब हम संतुष्ट रहते हैं। कुछ कर पायें या न कर पायें, अपनी सेवा तो हमने कर ली, अपना कल्याण तो कर लिया, अपने लिये हमें सुख मिल गया। इसलिए भिक्षु का, साधु-साधक का लक्षण है, कर्तव्य है कि वह सब समय संतुष्ट रहे। हर परिस्थिति में संतुष्ट रहे। जो जितना निष्काम होता है उतना वह सुखी रहता है और उसे जीवन निर्वाह की कमी कभी होती नहीं है।

अगली बात है 'पातिमोक्खे च संवरो'। 'पाति मोक्खे च संवरो' का अर्थ है साधु नियमों का पालन। साधु के लिए जो नियम बनाये गये हैं, साधु के लिए जो मर्यादा बनायी गयी है, उसका पालन। समाज में छोटे-बड़े सब लोग रहते हैं। नियम-मर्यादा रहने पर मन में एक अदब होती है कि यदि कोई गलत काम करेंगे तो लोग हमें रोकेंगे, टोकेंगे। मन में एक तरह का भय होता है।

समाज में रहकर अपने आपको गलत कामों से, गलत हरकतों से बचा लेते हैं। और जब समाज का अनुशासन हट जाता है, समाज से अलग हो गये,



अकेले गये तो वहां पर पूजा-प्रतिष्ठा मिली, सम्मान मिला, खाने-पीने की चीजें मिलीं, अनेक प्रकार के लोग मिले, यदि सावधानी नहीं है तो भटकने का, पतन होने का अवसर आ सकता है।

जो किसी के दबाव में रहकर संतुलित रहता है वह दबाव हटते ही सन्तुलित नहीं रह पायेगा, फिर वह मनमानी व्यवहार शुरू कर देगा। साधु मार्ग में बहुत बार ऐसा अवसर आता है जब समाज को छोड़कर, गुरु के साथ को छोड़कर अकेले जाना होता है। वहां पर रक्षक कौन है? वहां रक्षक है साधु मर्यादा, साधु नियम। साधु की जो रहनि है, जिस नियम-मर्यादा में रहकर साधना, साधुता सुरक्षित रहे उस नियम का पालन रक्षक होता है। और जो साधु नियमों के अनुसार चलता रहता है, साधु मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता, रहनि से बाहर पैर नहीं बढ़ाता वह चाहे कहीं भी रहे कभी डगमगायेगा नहीं, अपने पद से, अपनी साधना से विचलित नहीं होगा। ऐसे जो लोग रहते हैं वे अपना कल्याण तो करते ही हैं उनके द्वारा समाज को सही दिशा की प्रेरणा मिलती है, कल्याण की प्रेरणा मिलती है, समाज में एक जागृति आती है। वे चाहे कुछ न भी बोलें, बिल्कुल मौन और शांत रहें लेकिन उनके जीवन को देखकर लोगों को अपने आप प्रेरणा मिलती है कि इनका जीवन कितना संतुलित, मर्यादित और नियमित है। अपने आप उनके प्रति लोगों का भाव जागता है और उनसे लोग प्रेरित भी होते हैं कि हमें भी वैसा ही होना चाहिए।

कोई भी साधु-साधक हो उसका रक्षक साधु नियमों का पालन करना ही है। तथागत बुद्ध कहते हैं 'पातिमोक्खे च संवरो' साधु नियमों का पालन करना हर भिक्षु का कर्तव्य है और तभी वह निर्वाण की, शांति की प्राप्ति कर सकता है। परंतु इन्द्रिय संयम करने की, सब समय संतुष्ट रहने की और साधु नियमों को पालन करते रहने की प्रेरणा एवं सीख कहां से मिलेगी।

तथागत कहते हैं 'मित्ते भजस्सु कल्याणे' जो कल्याण मित्र हैं उनकी संगति में रहने से, उनकी सेवा

करने से। जो हमें कल्याण की तरफ प्रेरित करे वह कल्याण मित्र है। दुर्जन मित्र तो बहुत मिलते हैं। भटकाने वाले, गलत पाठ पढ़ाने वाले मित्र तो संसार में सर्वत्र हैं। लेकिन दोषों से, दुर्गुणों से, दुर्व्यसनों से, दुर्वासनाओं से बचाकर एकरस धर्म, सदाचार, सन्मार्ग, संयम-साधना-मार्ग में चलने की सीख-प्रेरणा देने वाले मित्र बहुत कम मिलते हैं। और वे मित्र हैं निर्मल जीवन संत-सद्गुरु। वे निरंतर अहेतुक भाव से कल्याण मार्ग में चलने की ही प्रेरणा देते रहते हैं। जिनके मन में कोई चाहना नहीं है ऐसे संत और गुरु अनेक प्रकार की असुविधाएं सहन करके भी प्रचार क्यों करते हैं? उनके अंदर कौन सी कामना रहती है? वे एकांत में चुपचाप बैठे होते तो क्या बिगड़ जाता उनका? उन्होंने तो त्याग, संयम और साधना द्वारा अपना कल्याण कर ही लिया है। लेकिन उन्होंने देखा कि जैसे मैं व्याकुल था, मेरे भीतर तड़पन थी अपने को दुखों से, पीड़ा से, परतंत्रता से बचाने की ऐसे ही दुनिया में और भी जिज्ञासु-मुमुक्षु हो सकते हैं। लेकिन सही संगत न मिलने के कारण, सही प्रेरणा न मिलने के कारण वे आगे बढ़ नहीं पा रहे हैं, चारों तरफ के जाल को काट नहीं पा रहे हैं। यदि उनको सही सीख दी जाये, सही प्रेरणा उन्हें मिले, सही रास्ता उन्हें मिले तो वे आगे बढ़ सकते हैं, अपना कल्याण का काम कर सकते हैं और लोकमंगल का भी काम कर सकते हैं। केवल इसी भावना से विवेक-वैराग्यवान ज्ञानी संत असुविधाएं एवं कष्ट सहकर भी ज्ञानोपदेश करते हैं। लेकिन ज्ञानोपदेश करते हुए उनके मन में कोई कामना नहीं होती कि मैं ज्ञानोपदेश कर रहा हूं तो लोग मेरा इस प्रकार से उपकार मानें, इस प्रकार से मेरी पूजा-प्रतिष्ठा हो, इस प्रकार से लोग मेरे खाने-पीने की व्यवस्था करें।

अपनी ओर से वे प्रयास करते हैं कि ये जो दुखी जीव हैं उन्हें सही रास्ता मिले और सही रास्ते पर चलकर वे अपने दुख को दूर कर सकें। इस कारण से प्रेरित होकर वे ज्ञानोपदेश करते हैं, ज्ञान का प्रचार करते हैं। ऐसे जो संत हैं वे ही कल्याण मित्र हैं। ऐसे कल्याण

मित्र जो संत हैं जो उनकी सेवा नहीं करते, विनम्रतापूर्वक उनके पास जाकर जिज्ञासा प्रकट नहीं करते, उनके साथ नहीं रहते तो उन्हें कल्याण की प्रेरणा कहां से मिलेगी? साधना पथ में वे एकरस कैसे बढ़ सकते हैं?

इसलिए तथागत बुद्ध कहते हैं “मित्ते भजस्सु कल्याणे” जो कल्याण मित्र सद्गुरु-संत हैं उनकी सेवा करना। उनका लक्षण क्या है? वे कहते हैं— ‘सुद्धाजीवे अतन्द्रिते’ शुद्धतापूर्वक जीवन निर्वाह लेने वाले, अपने जीवन निर्वाह के लिए भी, जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए भी जो किसी को तकलीफ नहीं देते। जो मिल जाये उसमें तृप्त रहते हैं। वे याचना भी नहीं करते। ‘अतन्द्रिते’ जो अतन्द्रित रहते हैं, प्रमाद में नहीं पड़ते, कभी गाफिल नहीं होते। सब समय सावधान रहते हैं। उन्होंने अपने आपको पूरी तरह से संयमित कर लिया है फिर भी वे अत्यंत सावधानीपूर्वक व्यवहार करते हैं, कोई गलत काम उनसे होने नहीं पाता। जो अपने आपको पूरी तरह से मांज लिया है, स्ववश कर लिया है इसके बाद वे चाहे जैसा व्यवहार करे, चाहे जहां रहें, ऐसा थोड़े होता है।

वे तो सामान्य साधक से और अधिक सावधान रहते हैं। जैसे कोई राजा हो और उसके राज्य की सीमा पर एक किला हो। वहां पर चढ़ाई होने की अधिक संभावना है। किसी शत्रु राजा ने उस पर चढ़ाई कर दी। राजा को पता चला तो सेना लेकर वहां गया और जो हमलावर राजा है उससे लड़ाई करके उसको मारकर भगा दिया। किला को उसके कब्जे से खाली कर दिया और अपने महल में लौट आया। परंतु फिर शत्रु न आये इसके लिए वहां सेना नियुक्त कर दी गयी। ऐसे ही साधना की भी बात है। जो ज्ञानी संत होते हैं वे सतत सावधानीपूर्वक संसार से पूर्ण निर्मोह रहते हैं।

मान लो, साधना के पूर्व में हमारा मन और हमारी इन्द्रियां सब चंचल थे, बहिर्मुख थे, भोगों की तरफ लगे हुए थे। संत मिले, गुरु मिले, उनका ज्ञान मिला, प्रेरणा

मिली और हमें संसार में दुख महसूस हुआ तो संतों की प्रेरणा पाकर हमने अपने मन और इन्द्रियों को समेटना शुरू किया। काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, राग-द्वेष, घृणादि—ये तमाम प्रकार के मानसिक शत्रु जो हम पर हमला किये हुए थे उनको एक-एक करके हमने खदेड़ना शुरू किया। खदेड़ने पर हमारी इन्द्रियां स्ववश हो गयीं और हमारा मन स्ववश हो गया।

अब हम यह मान लें कि सारे मनोविकारों पर मुझे विजय मिल गयी, अब तो मैं निश्चिंत हो गया, ऐसा मानकर सावधानी छोड़ दी जाये तो क्या होगा? ये मनो-विकार फिर से कब उदित हो जायें और कब हमारा पतन कर दें इसका कुछ पता नहीं। मनोविकारों को शांत करने के बाद भी, मनोविकारों पर विजय प्राप्त कर लेने के बाद भी जीवनपर्यन्त सावधानी की आवश्यकता है। यही है अतन्द्रित होना। सदैव जागरूक रहना, सदैव सावधान रहना।

इस प्रकार जो सदैव सावधान और जागरूक रहते हैं और निरंतर अपने मन-इन्द्रियों को स्ववश करने में लगे रहते हैं, उनपर विजय पाने के बाद भी असावधान नहीं होते ऐसे जो संत हैं वही कल्याण मित्र हैं। उनकी संगत से ही साधकों को कल्याण की सही प्रेरणा मिल सकती है। इसलिए तथागत बुद्ध कहते हैं कि उनकी सेवा करो, उनकी शरण में जाओ और उनकी शरण में ही रहो। यह भिक्षु का कर्तव्य है तभी वह साधना कर सकता है।

साधना मार्ग में जो भी चलता है उसके लिए तथागत बुद्ध कहते हैं कि वह मन-इन्द्रियों पर संयम रखे, जो प्राप्त हो उसे समझे कि इतना बहुत है, उसमें पूर्ण संतुष्टि का भाव रखे। जहां भी रहे, समाज या फिर अकेले में रहे वहां साधु नियमों का पालन करता रहे और जो विवेक-वैराग्यवान संत हैं, जिन्होंने अपना कल्याण कर लिया है उनकी शरण में रहे। शरण में रहकर विनम्रता पूर्वक साधना करता रहे, तभी वह अपना कल्याण कर सकता है।

—धर्मेन्द्र दास

## आये हैं सो जायेंगे

( परम पूज्यवर गुरुदेव श्री अभिलाष साहेब जी द्वारा दिनांक 30-5-2005 को कबीर संस्थान, सूरत में ध्यान शिविर के अवसर पर दिया गया प्रवचन।— प्रस्तुति श्री रामकेश्वर जी )

पूजनीय संत समाज, सज्जनो तथा देवियो! सद्गुरु कबीर कहते हैं—

आये हैं सो जायेंगे, राजा रंक फकीर।

एक सिंहासन चढ़ि चला, एक बंधा जात जंजीर॥

जो आया है वह जायेगा भले ही वह राजा हो, रंक हो या फकीर हो लेकिन जाने-जाने में बड़ा फर्क है। सद्गुरु बताते हैं “एक सिंहासन चढ़ि चला”। एक सिंहासन पर बैठकर गया, ऊंची गद्दी पर बैठकर गया और “एक बंधा जंजीर” एक जंजीर में बंधकर गया। यहां किसी बाहरी सिंहासन की बात नहीं है और न बाहरी जंजीर की बात है। बाहरी सिंहासन और बाहरी गद्दी पर तो ऐसे-ऐसे लोग भी बैठ जाते हैं जो बहुत खराब होते हैं। जिनके आचरण गंदे हैं, जिनका मन गंदा है, जिनका जीवन गंदा है ऐसे लोग भी बड़ी ऊंची गद्दी पर बैठते हैं लेकिन यह गद्दी किसी काम की नहीं है। यहां तो बात मन के गद्दी की है। मन की पवित्रता में जीना सिंहासन पर बैठकर जाना है और मन की गंदगी में जीना जंजीर से बंधकर जाना है।

हमलोग यह विचार करें कि हमारी असली कमाई क्या है। हमारी असली कमाई है मन की पवित्रता। बाहर भी धन की कमाई करनी पड़ती है। शरीर को अगर हम जल-भोजन नहीं देंगे, इसकी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं करेंगे तो यह चलेगा नहीं। इसलिए इस शरीर के लिए कुछ करना है और अपने शरीर के साथ-साथ दूसरे के लिए भी करना है क्योंकि दूसरे लोग हमारे शरीर के गुजर-बसर में सहायक होते हैं।

हमें यहां इस आश्रम में भोजन मिलता है। हम भोजन यहां बनाते नहीं हैं। हम देखते हैं कि सुबह ही पूरा आश्रम साफ हो जाता है लेकिन हम न झाड़ू लगाते

हैं न पोंछा लगाते हैं। ऐसे बहुत सारे काम हैं और वे सब हो रहे हैं तो इसका मतलब है कि हमें भी कुछ ऐसा करना चाहिए जिससे दूसरों की सेवा हो। दूसरों से सेवा लें और खुद सेवा न करें यह बहुत गलत होगा। इसलिए केवल अपना ही पेट नहीं भरना है बल्कि साथियों के भी जीवन गुजर में सहयोग करना है।

कल्याण के मार्ग में आजतक हमें जो कुछ उपलब्ध हुआ, उसमें हम गिना नहीं सकते हैं कि कितने लोगों का सहयोग है। हमें बात याद आती है कि बचपन में पहले हम स्कूली किताब में पढ़े, “क” माने कबूतर, “ख” माने खरगोश और “ग” माने गमला। फिर मिलावट की पुस्तकें पढ़े। फिर धर्मशास्त्रों को पढ़े और न मालूम कितने अखबारों, पत्र-पत्रिकाओं को पढ़े। कहां-कहां से कितना-कितना ज्ञान हुआ इसको हम कैसे गिना सकते हैं। कितने लोगों का उपकार हमारे ऊपर है यह हम कैसे गिना सकते हैं।

एक पुस्तक हम हाथ में लेते हैं और उसको पढ़ते हैं और ज्ञान प्राप्त करते हैं। पुस्तक का लेखक जब पुस्तक लिखने लगता है तो वह पहले-पहल एक बिन्दु से शुरू करता है। वह कलम जब रखता है तो एक बिन्दु बनता है फिर उसी में से अक्षर बनता चला जाता है और पुस्तक लिखना शुरू होता है। इसप्रकार मोटी-मोटी पुस्तकें लिख दी जाती हैं। फिर उसको शुद्ध करना, छापना, बेंचना कितने लोगों के सहयोग से होता है इसको बता पाना बहुत कठिन है। कागज कहां बनते हैं, स्याही कहां बनती है, मशीन कहां बनती है और यह सब काम कौन करता है। यह सब आप देखिये तो आपको पता लगेगा कि कितने-कितने लोगों का सहयोग है जिनसे हम ज्ञान की सामग्री पाते हैं।

चाहे आध्यात्मिक कल्याण की बात हो या चाहे व्यावहारिक कल्याण की बात हो, चाहे शरीर के गुजर-बसर की बात हो या आत्मा के उद्धार के आध्यात्मिक विषय हों इन सब में हमें जो सहयोग प्राप्त हुआ है वह अनेक लोगों के द्वारा दिया गया है। इसलिए पूरे संसार से हम उपकृत हैं अतः हमें भी दूसरे की कुछ सेवा करनी चाहिए।

कहने का तात्पर्य है कि हमारे ऊपर संसार का अमित उपकार है। हम सड़क पर चलते हैं तो क्या हमने सड़क बनवाया है, नहीं बनवाया है और पूरा उपभोग करते हैं। ट्रेन में, बस में और हवाई जहाज में बैठकर अनेक जगह घूमते हैं और उसके लिए थोड़ा-सा पैसा दे देते हैं और काम हो जाता है। कहने का तात्पर्य है कि आध्यात्मिक और आधिभौतिक दोनों क्षेत्रों में हमारे ऊपर संसार का उपकार बहुत है। इसलिए हमें कुछ ऐसा करना चाहिए कि जो दूसरे के लिए कल्याणकारी हो। इसलिए श्रम करना, सेवा करना यह बहुत जरूरी है। ज्ञानी पुरुषों ने यह नहीं कहा है कि सेवा और श्रम न करो।

कबीर साहेब ने कहा है—

*झूठ झूठा कै डारहू, मिथ्या यह संसार।*

*तेहि कारण मैं कहत हौं, जाते होय उबार॥*

संसार झूठा है। इसको झूठा जानकर छोड़ दो। यह बात मैं इसलिए कहता हूँ कि तुम्हारा उद्धार हो जाये। लेकिन आप जान लीजिए कि इसी झूठे संसार के लिए लगभग एक सौ बीस वर्ष तक वे घूमते रहे और अलख जगाते रहे। स्वामी शंकराचार्य जी ने कहा कि जगत तो तीनों काल में नहीं है लेकिन इसी जगत की सेवा के लिए वे जीवनभर घूमते रहे। इसलिए दुनिया में कोई भी महापुरुष, जो ज्ञान-विज्ञान सम्पन्न रहा है निकम्मा नहीं रहा है। सेवा की जरूरत है इसलिए सेवा करना चाहिए और श्रम करना चाहिए।

श्रम की पहली आवश्यकता इसलिए भी है कि श्रम से हमारा स्वास्थ्य ठीक रहेगा। जो श्रम नहीं करता है उसका स्वास्थ्य खराब हो जाता है। इसलिए शारीरिक

श्रम करने का जिसको अवसर न हो उसको भ्रमण और व्यायामादि कुछ जरूर करना चाहिए। आदमी को मेहनती होना चाहिए क्योंकि बिना मेहनत के यह शरीर बेकार है। इसीलिए एकादश व्रत में महात्मा गांधी ने शरीरश्रम को एक व्रत कहा। गांधी जी ने कहा है कि अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, असंग्रह, शरीरश्रम, अस्वाद, सर्वत्र भयवर्जन, सर्वधर्म समभाव, स्वदेशी, स्पर्शभावना विनय-व्रत निष्ठा से ये एकादश व्रत सेव्य हैं। उन्होंने इसमें शरीर श्रम भी एक व्रत रखा है और श्रम एक व्रत है ही।

शरीर से जो निकम्मा है वह गया गुजरा आदमी है। श्रम से मन शुद्ध होता है। किसी को चौबीस घंटे छुट्टी दे दी जाये तो क्या वह उस पूरे समय में ध्यान-भजन और स्वाध्याय में लीन रहेगा? वह लीन नहीं रह पायेगा, प्रपंच करेगा। कोई बिरला होगा जो उस समय में ध्यान-चिंतन में लीन रहेगा। इसलिए श्रम करना चाहिए और समय-समय से ध्यान, अध्ययन और चिंतन करना चाहिए।

अब जो परिपक्व पुरुष हैं वे इस पूर्ण स्थिति में हैं तो उनकी बात अलग है। वे कुछ करें या न करें, सब स्थिति में वे अपनी दशा में रहेंगे लेकिन वे भी निठल्ले नहीं रहते हैं। वे खुद श्रम करते हैं। इसलिए श्रम करना ठीक है। अपने लिए, दूसरे के लिए श्रम करना चाहिए क्योंकि अदलू-बदलू की दुनिया है। दूसरे से हमारा इतना उपकार होता है तब हमें भी कुछ करना चाहिए। लेकिन भाई, सावधान! क्योंकि इसी करने-धरने में बनना-बिगड़ना होता है और आदमी अपनी मंजिल को भूल जाता है। वह नहीं समझ पाता है कि इस संसार में बहुत थोड़े दिनों का निवास है। वह तो समझ लेता है कि हमें यहीं स्थायी रहना है और सारा अपराध करने लगता है। उस अपराध का परिणाम उसके मन पर पड़ता है। हम चाहे जो कुछ भी करें हमारे मन पर उसका प्रभाव पड़ना पक्का है। पहले तो सब कुछ मन से ही होता है।

तथागत बुद्ध ने कहा है—

मनोपुब्बङ्गमा धम्मा मनोसेट्ठा मनोमया ।

मनसा चे पदुट्टेन भासति वा करोति वा ॥

ततो नं दुक्खमन्वेति चक्कं' व वहतो पदं ॥

सभी धर्मों और कर्मों में मन पूर्वगामी है। यहां धर्म का अर्थ है कर्म। सभी कर्मों में मन पूर्वगामी है, आगे-आगे चलता है। हर जगह मन आगे-आगे चलता है। मन श्रेष्ठ है। सारे कर्म मनोमय हैं, मन से होते हैं। इसलिए मन से जो प्रदुष्ट भावना रखकर, बुरी भावना रखकर बोलता है और बुरा काम करता है उसके पीछे-पीछे दुख उसी प्रकार लगे रहते हैं, जिस प्रकार रथ में जुड़े जानवरों के पैरों के पीछे उसके पहिये लगे रहते हैं।

ऐसे ही जो आदमी प्रदुष्ट भावना से बोलता और काम करता है उसके पीछे दुख लगा रहता है। लेकिन “मनसा चे पसन्नेन भासति वा करोति वा” मन से प्रसन्न होकर जो बोलता और काम करता है, निर्मल होकर व्यवहार करता है—“ततो नं सुखमन्वेति” उसके पीछे-पीछे सुख लगे रहते हैं। “छाया'व अनपायिनी” जैसे मनुष्य के पीछे छाया लगी रहती है वैसे उस मनुष्य के पीछे अनपायिनी सुख लगा रहता है। अनपायिनी कहते हैं स्थिर, अविनाशी और स्थायी को। उसके पीछे स्थायी सुख लगा रहता है।

स्थायी सुख कहां है? हम समझते हैं कि स्थायी सुख महल में है, कार में है, वायुयान में है, जवानी में है, युवक और युवती के मिलन में है, बड़ा-बड़ा पद मिल जाये उसमें है। गुरु बाबा बन जाये उसमें है, महंत बनने में है, मण्डलेश्वर बनने में है, जगद्गुरु बनने में है लेकिन यह सब बकवास है। स्थायी सुख चित्त की निर्मलता में है। जिसका चित्त निर्मल है उसको स्थायी सुख है। जिसका चित्त गंदा है वहां स्थायी सुख कहां है।

बड़े-बड़े वैभव देखते-देखते मिट जाते हैं। यूनान से सिकन्दर विश्वविजय करने चला। खास तौर पर उसे ईरान से बदला लेना था क्योंकि वहां के राजा ने उसपर कभी हमला किया था लेकिन वह शैतान रास्ते के सभी देशों पर विजय करता आया। वह शरीर से बली, बुद्धि

से तीव्र, राजनीति और कूटनीति में प्रवीण था। उसकी शक्ति भी अद्भुत थी और बुद्धि भी अद्भुत थी।

सिकन्दर जब विश्वविजय करने के लिए चला तब वह नौजवानी में पहुंच गया था। उसके राज्य में नजदीक ही कहीं एकान्त में एक संत रहते थे जिनका नाम था डायोजनीज। वे शांत पड़े रहते थे। उनके पास सिकन्दर विश्वविजय के लिए आशीर्वाद लेने गया और कहा कि महाराज, मैं विश्वविजय करने जा रहा हूं।

महात्मा डायोजनीज ने कहा कि सिकन्दर! तुम विश्वविजय करके क्या करोगे।

सिकन्दर ने कहा कि सुख से रहूंगा। संत डायोजनीज ने कहा—जब तुम्हें सुख से ही रहना है तो मेरे पास आ जाओ और पड़ जाओ। मैं सुख से रहता हूं तुम भी सुख से रहो। सुख के लिए विश्वविजय करने की क्या जरूरत है। इस बात का उसके ऊपर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा लेकिन उस बेचारे को वैराग्य तो था नहीं। जब वह वहां से चलने लगा तो महात्मा डायोजनीज से कहा—“आप मेरे लिए कोई सेवा बताइये। मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूं।”

डायोजनीज ने कहा—“तुम्हारे सेवा की कोई जरूरत नहीं है।” सिकन्दर ने आग्रह किया—“कुछ तो सेवा ले लीजिये।” तब महात्मा डायोजनीज ने उससे कहा कि अच्छा, तुम हट जाओ और धूप आने दो। बस तुम इतनी ही सेवा कर दो। सिकन्दर खड़ा था तो उसकी परिछाई महात्मा डायोजनीज के ऊपर पड़ रही थी। जिससे वे अच्छी तरह से धूप नहीं ले पा रहे थे। महात्मा डायोजनीज की इस निस्पृहता, इच्छाहीनता, लापरवाही और मस्तानगी को देखकर सिकन्दर बहुत प्रभावित हुआ। वह वहां से जब चला तो अपने मंत्रियों से कहा कि मैं या तो महात्मा डायोजनीज जैसा साधु बनूंगा या तो विश्वविजेता बनूंगा।

इतिहास में सिकन्दर को महान सिकन्दर कहते हैं लेकिन वस्तुतः वह शैतान सिकन्दर था। उसमें जो शक्ति थी उसको उसने रचनात्मक दिशा में नहीं लगाया, विध्वंसात्मक दिशा में लगाया। लोगों को सताने में

लगाया। इतिहास इस बात का साक्षी है कि जो रजवाड़े युद्ध ज्यादा किये हैं वे रचनात्मक कार्य नहीं कर सके हैं और जो रचनात्मक काम किये वे ज्यादा युद्ध नहीं किये।

सिकन्दर जीवन में इतना मार-काट करके क्या पाया। एक कागज में उसको लिख भर दिया जाता है— महान सिकन्दर, लेकिन जीवन में उसने कुछ नहीं पाया। जबतक जीवन था वह शांति नहीं पा सका और ना-मालूम उसने कितने लोगों को पीड़ित किया। हमारी सबसे बड़ी उपलब्धि पवित्र मन है। पवित्र मन में ही स्थिर सुख है। सब जीव क्या चाहते हैं? केवल स्थिर सुख। जो कभी न छूटे दुनिया में कोई भी सुख ऐसा नहीं है।

एक नवयुवक को जब पुत्र पैदा होता है तब उसे बहुत खुशी होती है लेकिन उसी पुत्र से एक दिन वह पूरा उदास हो जाता है। पुत्र का उसमें दोष नहीं है क्योंकि स्थिति ही वैसी है। अब पुत्र जवान हो गया और काम-धाम में लग गया। उसका विवाह हो गया। उसकी पत्नी आ गयी। अब उसे अपने मन के साथ-साथ पत्नी के मन को भी ढोना है तब फर्क तो पड़ेगा ही।

मां-बाप समझते हैं कि मैंने इसको पाला-पोषा, बड़ा बनाया, पढ़ा-लिखाकर योग्य बनाया और सब कुछ इसी के लिए किया लेकिन हमसे यह उदास रहता है और बाहर से एक लड़की आयी उसका यह गुलाम बन गया। ऐसा अर्थ करना गलत है। वह उसी के ऊपर नहीं है किंतु सबके ऊपर है। जितने गृहस्थ लोग हैं सबके ऊपर यही बात आती है। जो गृहस्थ लोग ऐसा सोचते हैं वे भी तो कभी इसी प्रकार पत्नी के गुलाम हुए थे। लड़कियां सब समय बाहर से ही आती हैं और वे ही लड़कियां घर की मालकिन बनती हैं। और अगर पति-पत्नी परस्पर प्रेम से न रहें तो गृहस्थी का क्या सुख होगा।

गृहस्थी का सुख है कि पति-पत्नी प्रेम से रहें। अगर वे कामनाबद्ध होंगे तो प्रेम नहीं रहेगा। पत्नी की बड़ी-बड़ी कामनाएं हैं। उसकी कामनाएं पति कहां से

पूरा करेगा। पति की बड़ी-बड़ी कामनाएं हैं तो पत्नी उनको कहां से पूरा करेगी। पति के लिए पत्नी धन है और पत्नी के लिए पति धन है। जब दोनों ऐसा मानें और दोनों दोनों को समर्पित हों तभी गृहस्थी में वे आनन्द से रह सकते हैं। भोग में आनन्द नहीं है। भोग में तो जितना बन सके योग करना चाहिए। लोग शादी क्यों करते हैं? क्योंकि समझते हैं कि हम अपने को संभाल नहीं पायेंगे और अगर संभाल न पाये और शादी भी न करे तो और गंदे होंगे और समाज भी गंदा होगा। इसलिए विवाह करना उचित है।

जो विवाह न करके पूरा जीवन ठीक से रह सकें वे बहुत बढ़िया हैं। वे चाहे लड़का हो चाहे लड़की उनको धन्यवाद है लेकिन बाकी लोगों को विवाह करके रहना चाहिए और विवाह का अर्थ है जिम्मेदारी का निर्वहन—“विवाहः विशिष्टं वहनम्”। विशिष्ट ढंग से एक दूसरे का वहन करना विवाह है। वहन करना, ढोना, ले चलना, निभाना यह विवाह का अर्थ है। पत्नी को पति और पति को पत्नी ठीक ढंग से निभाये। दोनों खुश-खुश रहें तब गृहस्थी का सुख है। गृहस्थी का सुख काम-भोग में उलझना नहीं है। वह तो अंगमिलन की चेष्टा जवानी में होती है और विवेक नहीं है तब उसमें आदमी बह जाता है। इसलिए विवाह है।

जिसके लिए आपको आकर्षण था उसको आप देख लिये। एक बार, दो बार और अनेक बार उसको आप देख लिए अब तो आप में अक्ल आ जानी चाहिए कि उसमें अपने को निरन्तर क्षीण करना बेवकूफी के सिवाय कुछ नहीं है। इसलिए दोनों को समझदारी अपनानी चाहिए और अधिक से अधिक संयम में रहना चाहिए। पारस्परिक प्रेम का अर्थ है गृहस्थी की गाड़ी को चलाने के लिए पति-पत्नी दोनों चक्के बने। दो चक्के से ही गाड़ी चलती है एक से नहीं।

अगर पति और पत्नी प्रेम से रहते हैं तो तीन पीढ़ी का हित होता है। जहां पति-पत्नी प्रेम से हैं वहां मां-बाप की सेवा ठीक से होगी और अगली पीढ़ी जो

आयेगी-उनके बच्चे जो आयेंगे-उनको भी अच्छे संस्कार मिलेंगे। वे देखेंगे कि हमारे माता-पिता प्रसन्न रहते हैं, आपस में प्रेम से रहते हैं। ये लोग लड़ते नहीं हैं, झगड़ते नहीं हैं। ये एक दूसरे को बुरा नहीं कहते हैं तो इसका उनके ऊपर अच्छा प्रभाव पड़ेगा और पति तथा पत्नी भी सुख से रहेंगे।

जहां मां-बाप कलह करनेवाले हैं, पति-पत्नी लड़नेवाले हैं तो मां-बाप की सेवा ठीक से नहीं होती है और बच्चों को अच्छे संस्कार नहीं मिलते हैं। इसलिए समर्पण हर जगह जरूरी है। बिना समर्पण के कोई सुखी नहीं रह सकता है। और यह ठीक से समझ लेना चाहिए कि समर्पण गलत नहीं है, समर्पण कोई गुलामी नहीं है, पराधीनता नहीं है। पराधीनता में स्वाधीनता है और स्वाधीनता में पराधीनता है। स्वतंत्रता में परतंत्रता है और परतंत्रता में स्वतंत्रता है। “स्वतंत्र रहना चाहिए”—ऐसा कहना तो सरल है। लेकिन उच्छृंखल हो जाना क्या कोई स्वतंत्रता है। हम अगर सड़क पर चलें और मानें कि हम स्वतंत्र हैं हम चाहे दायें चलें चाहे बायें तो कहीं-न-कहीं रगड़ जायेंगे। इसलिए सड़क पर जब चलें तो परतंत्र होकर बायें से चलें, स्वतंत्र होकर दायें न चलें।

पति-पत्नी एक दूसरे के अधीन रहें। एक दूसरे के अधीन रहना बन्धन नहीं कल्याण है। जैसे मुझे पांच बजे इस सभा में आना चाहिए। मेरे लिए यह एक परतंत्रता है लेकिन यह कोई गुलामी नहीं है और इससे हमारा कोई बन्धन नहीं बनता। हमने यहां आने का जो समय दिया था उस समय पर मुझे आना चाहिए और उस समय पर मैं यहां आया तो यह कोई परतंत्रता नहीं है। एक दूसरे के अधीन रहना कोई परतंत्रता नहीं है। यह एक अनुशासन है और व्यवस्था है। राजा के अधीन प्रजा है तो प्रजा के अधीन राजा भी है। अफसर के अधीन बाबू हैं तो बाबू के अधीन अफसर भी हैं। इसलिए समर्पण, सेवा और सद्भाव से व्यावहारिक क्षेत्र उज्ज्वल होता है और व्यावहारिक क्षेत्र के उज्ज्वल हुए बिना परमार्थ कभी बन नहीं सकता लेकिन यह न भूलें कि यहां किसी का कुछ नहीं है।

माली आवत देखि के, कलियां करीं पुकार।

फूली फूली चुनि लई, काल हमारी बार॥

साहेब कहते हैं कि बाग में कल की जो कलियां थीं वे आज खिलकर फूल हो गयीं हैं। माली बाग में आया और उसने उनको चुन लिया। इसे देख आज की जो कलियां हैं वे आपस में विचार करती हैं और कहती हैं कि जो कलियां खिल गयीं उनको आज माली ने तोड़ लिया। कल हमारी भी बारी होगी। हमें भी कल माली आकर तोड़ ले जायेगा। यह कितनी हृदयद्रावक बात है। जवान मानो परस्पर कहते हैं कि बूढ़े-बूढ़े चले गये और हमलोगों की भी बारी आ रही है।

माली तो खिले हुए फूलों को ही तोड़ते हैं, अधखिली कलियों को नहीं तोड़ते। लेकिन मौत तो कली को क्या अंकुर को भी जो आया रहता है तोड़ देती है। मां के गर्भ में भी बच्चों का शरीर छूटता है। गर्भ हुआ और थोड़े दिन में गर्भ गिर जाता है। बच्चा गर्भ में पूरा ठीक-ठाक है और पैदा होने के समय वह मरा हुआ निकला या पैदा होकर ही मर गया। इसलिए मृत्यु तो ऐसी है कि किसी को नहीं छोड़ती है।

जो बड़ी-बड़ी बिल्डिंग्स हैं, मशीनें हैं, गाड़ियां हैं, इन सबके विषय में इंजीनियर बता सकता है कि इतने दिनों तक ये चलेंगे लेकिन किसी का कितना भी स्वस्थ और सुन्दर शरीर हो उसके लिए कोई डॉक्टर और कोई वैज्ञानिक नहीं बता सकता कि वह कब तक चलेगा। इतना कमजोर यह शरीर है। इसलिए इस शरीर को लेकर प्रमाद नहीं करना चाहिए बल्कि जगकर चलना चाहिए।

हमारी उपलब्धि है चित्त की निर्मलता और यह बात समझना बड़ा मुश्किल है। किसी आदमी के आस-पास जब दस लोग खड़े रहें तब लगता है कि यह कुछ हैसियत का आदमी है। बड़ी बिल्डिंग हो तब लगता है यह कोई आदमी है। कई कारों दरवाजे पर खड़ी हों तब लगता है यह कुछ हैसियत का है। यह सब कुछ न हो तो आदमी है क्या फिर!



लोग समझ नहीं पाते हैं कि असली ऐश्वर्य क्या है। वे बाहरी कूड़ा-कबाड़ को ऐश्वर्य मानते हैं। बाहरी ऐश्वर्य बड़ा ऐश्वर्य नहीं है, किंतु मन का ऐश्वर्य ही बड़ा ऐश्वर्य है। मन की निर्मलता बड़ा ऐश्वर्य है यह समझ पाना बड़ा मुश्किल है। जब कोई साधना में प्रवेश करे तब इस बात का पता लगता है।

किसी के यहां सोना, चांदी, हीरा और पन्ना, पुखराज बोरी के बोरी रखें हों लेकिन उसका मन जलता हो तब वह उपलब्धि किस काम की है। किंतु यदि उसका मन शीतल और संतुष्ट है तो खाने को थोड़ा मिल जाये और तन ढकने को कुछ कपड़े मिल जाये और सोने की जगह मिल जाये फिर और क्या बाकी है। इस पर ध्यान देने की जरूरत है।

आप कह सकते हैं कि अगर ऐसे ही सब सोच लें तो दुनिया का यह ऐश्वर्य ही नहीं सकता। लेकिन मैं पूछता हूं कि क्या आप दुनिया का ऐश्वर्य दिखाने के लिए जीवन में आये हैं। वह तो जहां जो होना होता है होता रहता है और होता भी रहेगा। लेकिन यह समझ ही बड़ी मुश्किल है। आप समझते हैं तो कीजिए। दुनिया भर का प्रबन्ध न कीजिए। दुनिया में सब होगा। बहिर्मुख तो सब हैं, अंतर्मुख कोई बिरला होता है। इसको समझ पाना बड़ा मुश्किल है क्योंकि मनुष्य का मन बहिर्मुख है। वह सदा से विषयों का आदती है।

किसी को दस-बीस हजार रुपये दे दो और कह दो कि आप दिनभर मजदूरों से काम कराओ और उनको मजदूरी दो तो वह बड़ी प्रसन्नता से करेगा। और कहीं उससे कह दो कि इस कमरे में चार घंटे चुपचाप बैठे रहो तो यह उसके लिए बड़ा मुश्किल हो जायेगा क्योंकि आदमी में स्वाभाविक गतिशीलता और क्रिया है। अपने को समेटना सहज नहीं है लेकिन जो समझ जायेगा और जिसको इसका रस मिल जायेगा उसके लिए इससे सहज कुछ होगा ही नहीं। इसलिए जीवन में सबसे बड़ी उपलब्धि है—मन की निर्मलता। प्रसन्न मन ही जीवन की सर्वोच्च उपलब्धि है।

हमारा जीवन ऐसा होना चाहिए कि जब बिस्तर पर जायें तो आराम से सो जायें। दिमाग पर कोई खटक न रहे। और नींद जब खुले तो भी कोई तनाव न रहे। दिनभर अपना काम किये और कुछ साधन-भजन किये क्योंकि सबको अपने विश्वास के अनुसार कुछ साधन-भजन तो करना ही चाहिए, फिर काम-धाम किये और दिनभर प्रसन्न रहे।

दिन में सभी मनुष्यों से प्रसन्नतापूर्वक मिले। घर-परिवार में सबसे, पड़ोसी से और बाहर भी सबसे प्रसन्न होकर मिले। कोई विपरीत है तो विपरीत में ज्यादा व्यवहार तो सम्भव नहीं रहता है लेकिन विपरीत के प्रति भी अपने मन में कोई दुर्व्यवहार न हो। कोई हमारे लिए विपरीत काम करता है, शत्रु जैसा व्यवहार करता है उसके साथ भी विनम्रता का व्यवहार कर दो। और हमारा शत्रु भी कौन है! कोई हमारा शत्रु नहीं है। अगर जो कोई हमारे साथ शत्रुवत व्यवहार करता है तो समझना चाहिए कि उसकी जैसी समझ है वैसा वह सोचता है। उसको वैसा सोचने दो। आप अपना मन खराब न करो। कहीं वह मिल जाये तो नम्रता से व्यवहार कर लो और निकल जाओ।

विरोधी के साथ व्यवहार ज्यादा नहीं किया जा सकता। अनुकूल लोगों में ही ज्यादा व्यवहार सम्भव है लेकिन विवेकवान को अपने विरोधी के प्रति भी अपने मन में दुर्व्यवहार नहीं होता। उसको तो सब से प्रेम रहता है। वह सबसे गदगद रहता है और यह अपने घर से ही शुरू करना चाहिए। अक्सर होता यही है कि अपने घर में लोग कुढ़ते रहते हैं। पत्नी, पति, भाई, माता, पिता से अनेक लोग जलते रहते हैं और उद्वेलित होते रहते हैं। जीने का यह बहुत गलत तरीका है। अपनों में पहले सरल बनो, फिर पड़ोसियों में, फिर जहां-जहां काम करो वहां-वहां सब समय गदगद रहो, प्रसन्न रहो और दिनभर यह प्रसन्नता रहे। फिर बिस्तर पर जाओ तो आनन्द से सो जाओ। यही असली जीवन है।

लेकिन भाई! अब इस दरम्यान में भूख लगने पर भोजन, तन ढकने को कपड़े और सोने की जगह जरूर मिल जाये। इतना मिल जाये बस और कुछ न मिले तो न मिले। फिर जो अपने कर्तव्य हैं उनको करो और यह भी समझ लो कि सब की श्रेणी और योग्यताएं अलग-अलग हैं। सब अपनी-अपनी योग्यता और श्रेणी के अनुसार करते-धरते हैं। आप जहां रहो वहां अपनी योग्यता और श्रेणी के अनुसार कुछ करो-धरो।

आप करोड़पति हो तो जहां रहो वहां वैसा करो और साधारण हो तो भी जहां रहो वहां वैसा करो। झोपड़ी में हो, महल में हो, राजनेता हो और चपरासी हो या सड़क पर साइकिल का पंचर बनाते हो या साधु हो जहां जो हो, वहां अपना कर्तव्य करो लेकिन मन को खुश रखो और मन खुश तब रहेगा जब निर्मल रहेगा।

गंदा मन कभी खुश नहीं रह सकता। सिनेमा हाल में चले गये, थोड़ा खुश हो गये, थियेटर में चले गये, थोड़ा प्रसन्न हो गये। मित्र मिल गये, थोड़ा प्रसन्न हो गये। उनसे दिल्लगी कर लिये तो मन खुश हो गया। गुलाब जामुन मिल गया तो थोड़ा खुश हो गये। यह सब खुशी कबतक रहेगी और यह खुशी तो एक दिखावा है। शीतल और निर्मल मन होना ही असली खुशी है और इसके समान खुशी कुछ और हो ही नहीं सकती।

इस जीवन की प्रक्रिया में कुछ होने से कुछ होता है। अचानक कुछ नहीं होता है। क्या निर्मल मन ऐसे ही हो जायेगा। अरे भाई! उसकी तली में जो व्यवहार है जब वह निर्मल होगा तब मन निर्मल होगा। छल करोगे, धोखा दोगे, लोगों को पीड़ित करोगे, इन्द्रियों को उत्तेजित करने की प्रवृत्ति रखोगे, गलत चीज खाओगे, ज्यादा खाओगे तब कहां सुखी रहोगे। छोटी-छोटी बातों पर ध्यान देना है। खाने-पीने में सावधान रहना बहुत जरूरी है। अण्डा-मांस, मछली कभी न खाये, नशा का सेवन कभी न करे। तली-भूनी चीजों से बचना चाहिए। तेल ज्यादा खाना बहुत गलत है।

सब्जी में तेल इतना ही पड़े कि सब्जी खाते समय पता न लगे कि इसमें तेल पड़ा है लेकिन लोग इतना

तेल डालते हैं कि उनकी सब्जी में तेल तैरता रहता है। ऐसे लोगों को जब हमारी सब्जी खाना पड़ता है तो वे बहुत परेशान हो जाते हैं। तेल बहुत कम खाओ। घी, दूध और दही कोई बहुत बढ़िया चीज नहीं है कि उसको ज्यादा खाने से लाभ होता है। मिले तो थोड़ा खा लेना चाहिए।

“मेवे बहुत गुणकारी हैं”—यह विचार रखना मेरे विचार से एक पागलपन ही है। सहजरूप में मिला हुआ भोजन ही ठीक है। वही भोजन सही है जो जल्दी पच जाये और वह भोजन गरीबों का है। “अन्न पानी योग”—अन्न को पानी में पकाकर खाना है। भोजन सादा, संतुलित और हलका होना चाहिए। भोजन ऐसा करना चाहिए कि भोजन कर लेने के बाद पेट भारी न लगे और भोजन करने का जो अगला समय हो उस समय बेताब भूख लगे, कड़ी भूख लगे तब भोजन का आनन्द है। तो ऐसा भोजन करो कि आगे के समय में कड़ी भूख लगे इसलिए संतुलित खाओ और विवाद न करो। मनुष्यों से उद्देगवाला व्यवहार मत करो। किसी प्राणी को सताओ मत। सब समय विवाद से बचकर रहो तब जीवन में संतुलन आयेगा।

विवादी-झगड़ालू रहोगे, प्राणियों को तकलीफ दोगे, उनको धोखा दोगे, अपने मन-इन्द्रियों को उत्तेजित करोगे, उलटा-सीधा खाओगे, ज्यादा खाओगे तो न शरीर ठीक रहेगा और न मन ठीक रहेगा, उलटे आप पीड़ित रहोगे। अपने जीवन को शोधो। असली भजन है जीवन की पूरी प्रक्रिया को शोध लेना। फिर अपने-अपने विश्वास के अनुसार ओम, राम, अल्ला, खुदा, गॉड यह सब कहते रहो। मूल वस्तु में कोई अन्तर नहीं है। अल्ला कहा, राम कहा तो इससे क्या चीज दो हो गयी। एक ही बात है। भाव एक है और शब्द अलग-अलग हैं।

अल्लाह शब्द अरबी भाषा का है। “अल इलाह” इन दो पदों को मिलाकर “अल्लाह” शब्द बनता है। “अल” आर्टिकल (Article) है। जैसे इंगलिश में दी (The) शब्द है। ऐसे ही अरबी में “अल” है और

“इलाह” का अर्थ होता है पूज्य। वेदों में ऋग्वेद पहला वेद है और ऋग्वेद का पहला मंत्र है—“अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्” यह भी एक गायत्री मंत्र है। पहला शब्द है—“अग्निमीले”। अग्निमीले में दो पद हैं—“अग्निम् और इले।”

सायणाचार्य जो आज से सात-आठ सौ वर्ष पूर्व वेदों के प्रसिद्ध भाष्यकार हुए हैं “अग्निमीले पुरोहितं” के अपने भाष्य में उन्होंने लिखा है कि “अग्नि नामकम् देवम्”—अर्थात् अग्नि जो शब्द है वह तो अग्नि नाम का देवता है। “ईले स्तौमि”—इले का अर्थ होता है स्तौमि यानी स्तुतियोग्य। फिर आगे वे लिखते हैं—“ईड स्तुतावित धातुः” यानी ईड धातु स्तुतिपरक है। ईड एक धातु है। ईड, ईल, ईलाह एक ही बात है। ईल स्तुतिपरक धातु है। किसी भी संस्कृत कोश को आप देखें तो ईडा और ईडु का अर्थ प्रार्थना ही लिखा गया होगा। ईड इलाह एक ही बात है।

अब आप सोचिये कि “अल्लाह-अल इलाह” और “अग्निमीले पुरोहितं”—“अग्निं इले”—ऐसा कहा जाता है। ये सब दो परिवार नहीं हैं। एक ही परिवार है। आगे चलकर विभेद होता चला गया। आप अरबी में “दुआ” शब्द पाते हैं। मुसलमान लोग प्रायः कहते हैं कि हम दुआ करते हैं। दुआ के दो अर्थ होते हैं— प्रार्थना करना और आशीर्वाद करना। लोग कहते हैं कि दुआ कीजिए महाराज यानी आशीर्वाद दीजिये। दुआ कीजिए यानी प्रार्थना कीजिए और इन्हीं दोनों अर्थों में वेदों में बातें आयी हैं।

“देवेषु कृणतो दुवाः” हम देवता के लिए दुआ करते हैं, प्रार्थना करते हैं। दोनों जगह उच्चारण बिलकुल वही है। घुटने टेककर मुसलमान लोग नमाज पढ़ते हैं। घुटने टेककर प्रार्थना करने की बात वेदों में बारम्बार आती है क्योंकि घुटने टेककर प्रार्थना करने में ज्यादा विनय है।

भारतीय परम्परा में ध्यान करने की प्रक्रिया बढ़ गयी इसलिए पालथी मारकर ध्यान की बात आयी और इसलामिक प्रक्रिया में ध्यान का कम वातावरण हुआ

इसलिए आज भी वे घुटने टेककर प्रार्थना करते हैं। कहने का मतलब है कि हिन्दू और मुसलमान या और कोई भी हो सब एक ही हैं दूसरा नहीं है। विभेद होते-होते बहुत विभेद हो गया। उनमें भी विभेद हुआ और विभेद तो हर जगह हुआ। मुसलमान-मुसलमान में विभेद हुआ, हिन्दू-हिन्दू में विभेद हुआ, जैन-जैन में विभेद हुआ, सब जगह विभेद हुआ।

आदमी में कुछ अलग ढंग से सोचना और अलग ढंग की शब्दावली देना, अलग पूजा-पद्धति बनाने का स्वभाव है लेकिन इन सब विभिन्नताओं में जो एकता ओतप्रोत है, उसको देखना चाहिए। कबीर साहेब का काम यही था—अनेकता में एकता प्रदर्शित करना।

भाई रे दुइ जगदीश कहाँ ते आया, कहु कौने बौराया।  
अल्लाह राम करीमा केशव, हरि-हजरत नामधराया।  
गहना एक कनक ते गहना, यामें भाव न दूजा।  
कहन सुनन को दुइ कर थापे, एक निमाज एक पूजा।  
वोही महादेव वोही महम्मद, ब्रह्मा आदम कहिये।  
को हिन्दू को तुरुक कहावै, एक जिमी पर रहिये।  
वेद-कितेब पढ़े वै कुतबा, वै मोलना वै पाँडे।  
बेगर-बेगर नाम धराये, एक मिट्टी के भाँडे।  
कहहिं कबीर वै दूनों भूले, रामहि किनुह न पाया।  
ये खसी वै गाय कटावै, बादिहिं जन्म गमाया॥

कबीर साहेब तो खुले दिल के महापुरुष थे। जैसा वे देखते थे वैसा कह देते थे। डर-भय की बात उनके लिए कुछ नहीं थी। पहले सब एकता की बात कहे कि तथ्य तो एक है लोग व्यर्थ में भटक रहे हैं। तब कहा कि दोनों भटके हैं। एक ईश्वर के नाम पर और एक देवता के नाम पर बकरा और गाय कटवा रहे हैं। दोनों नहीं समझते हैं। वास्तविकता एक है। इस बात को समझने की जरूरत है। प्रेम का प्रकाश सर्वत्र होना चाहिए। घर में, परिवार में, समाज में, सम्प्रदायों में कोई दूसरा नहीं है, सब हमारे स्वजन हैं यह भावना मन में आनी चाहिए।

स्थिर सुख वह पाता है जिसका मन निर्मल है। निर्मल मन में स्थिरता आती है, शांति आती है और वही

समाधि में पहुंच सकता है। मन में बेचैनी न हो, ग्रंथियां न हों, उद्वेग न हो। ऋषि कहते हैं—

शय्याऽऽसनस्थोऽथ पथि ब्रजन वा स्वस्थः  
परिक्षीणवितर्कजालः ।

संसारबीजक्षयमीक्षमाणः स्यान्नित्यमुक्तोऽमृतभोगभागी ॥

अर्थात् आदमी शैया पर लेटा हो, आसन पर बैठा हो, रास्ते में चलता हो, स्वस्थ हो यानी अपने में स्थित हो। अपने में संतुष्ट हो। “परिक्षीण वितर्कजालः”— जिसका वितर्कजाल क्षीण हो गया हो। वितर्कजाल है उद्वेग। दूसरे के लिए प्रतिक्रिया, रिएक्शन ही वितर्कजाल है। आदमी हर समय रिएक्शन में ही डूबा रहता है। पति, पत्नी, पड़ोसी, भाई, सबके लिए रिएक्शन रहता है और यह नरक है। ऋषि कहते हैं कि “परिक्षीण वितर्कजालः” वितर्कजाल, रिएक्शन और प्रतिक्रिया परिक्षीण हो। केवल क्षीण ही न हो किंतु परिक्षीण हो। “परि” विशेषण है और उसका अर्थ है समग्रता अर्थात् वितर्कजाल पूरा का पूरा क्षीण हो। मन में कोई विकार न हो।

“संसारबीज क्षयमीक्षमाणः”—संसार बीज है लेकिन “क्षयमीक्षमाणः”—क्षयम् ईक्षमाणः। ईक्षण कहते हैं देखने को और ईक्षमाणः का अर्थ है देखते हुए। अर्थ हुआ कि संसार बीज को क्षय करने की दृष्टि से देखता हुआ जो चलता है। संसार का, संसार में भटकने का बीज है—मोह। मोहवश आदमी भटकता है। जहां वह मोह मान लिया उसके लिए उलटा-सीधा सब करने को तैयार रहता है। जहां लगा कि यह तो दुश्मन है तो उसको मारने के लिए तैयार हो जाता है। जो सावधानी से नहीं रहता है उसका पूरा जीवन एक तमाशा बनकर रह जाता है।

मोह को जो नष्ट करने की दृष्टि से देखता रहता है यानी हर समय सावधान रहता है कि हमारे मन में कहीं मोह लग न जाये। जीवन में कहीं भी अनुकूल मिलते हैं तब मोह लग जाता है। बस वहीं सारा संकट उपस्थित हो जाता है। जहां मोह किये समझ लो वहीं दुख का बीज उदय हो गया।

दशरथ ने कैकेयी में अति मोह किया तो उसका परिणाम भयंकर हुआ। कैकेयी पंजाब की लड़की थी। दशरथ भी कैकेय देश गये और कैकेय नरेश से कहे कि मैं कैकेयी को चाहता हूँ।

कैकेय नरेश ने उनसे वचन लिया कि कैकेयी से उत्पन्न बच्चा ही अयोध्या की गद्दी पर बैठेगा यह प्रतिज्ञा पहले आप दीजिये तब मैं आपको कैकेयी दूँ। इस बात को दशरथ ने स्वीकारा और वही दाब उनके मन में था कि भरत अधिकारी है। उनके रहते राम की राजगद्दी कैसे हो सकती है। दूसरी तरफ दाब था राम के प्रति मोह। जब भरत ननिहाल गये थे तब राजा दशरथ को मौका मिल गया और वे राम के लिए गद्दी सजाने लगे। बालमीकि रामायण में साफ-साफ लिखा है। दशरथ कहते हैं—राम! भरत अयोध्या से जब तक दूर है तुम्हारी राजगद्दी हो जाये। भले ही वे सज्जन हैं लेकिन सज्जन का मन भी बदल जाता है। इसलिए तुम्हारी राजगद्दी कल ही हो जाये।

आप सोचिये कि एक छोटा-सा कार्यक्रम भी जब घर में करते हैं तो घर के सभी लोग इकट्ठे होते हैं और अयोध्या में राजसत्ता ही बदल रही है और भरत-शत्रुघ्न बाहर हैं और उनको बुलाया नहीं जा रहा है। यह क्या कोई बुद्धिमानी की बात हुई। लेकिन दशरथ के मन में एक तरफ तो राम का मोह था और दूसरी तरफ कैकेयी के प्रति भी मोह और उनका अपना अज्ञान तो था ही। इसी तिगड्डे में पड़कर दशरथ की जो दुर्गति हुई उसको आप जानते हैं।

राम का वनवास ही हो गया तो दशरथ को परेशानी क्या थी। दो-चार महीने में वे राम के पास घूम आते। लेकिन राम गये तो वे गिरे तो बोल ही नहीं पाये और मर ही गये। यह मोह का कितना बड़ा प्राबल्य है। इतने जोर का धक्का लग जाना मोह की प्रबलता ही है। सहने की कोई शक्ति ही नहीं थी। नाम चाहे जितना बड़ा हो अगर आदमी मोहग्रस्त है तो वह दो कौड़ी का है। सब से बड़ी दुर्बलता है—मोह।

पहले और आज भी ऐसे राजनेता होते हैं जो किसी तेज-तरार प्रतिकूल राजनेता को लड़कियों के चक्कर में

फंसा देते हैं और लड़कियों के चक्कर में जो राजा या नेता फंसा वह नष्ट हुआ। राजा लोग दुश्मन राजा के पास कई सुन्दरी लड़कियां भेज देते थे और वह राजा समझ नहीं पाता था और उसी में डूबकर अपने को नष्ट कर देता था। चाहे कोई लड़की हो या लड़का जो वासना में डूबेगा वह कमजोर हो जायेगा और नष्ट हो जायेगा। सबसे बड़ी दुर्बलता है आसक्ति। आसक्ति को जो जीत लेता है वह उबर जाता है। “कहहिं कबीर ते ऊबरे जाहि न मोह समाय”—कबीर साहेब कहते हैं कि वही उबरता है जिसके मन में मोह नहीं समाता। मोह को जीतकर जब कर्म करेंगे तब वे कर्म उज्ज्वल रहेंगे और मोहवश रहेंगे तो राग करेंगे, द्वेष करेंगे और फिर उलटा-सीधा सब शुरू होगा।

जो अपने को निस्पृह रखेगा वह निर्मल कर्म करेगा। निर्मल कर्म करेगा तो मन उसका निर्मल होगा। निर्मल मन स्थिर सुख है और वही सिंहासन में बैठकर जा रहा है। जिसका मन गंदा है वह जंजीर में बंधा है, वासना और मोह में बंधा है। वह दुख भोगेगा। कुछ काम देगा नहीं। न तो साथी काम देगा और न धन काम देगा, न पद काम देगा, न गुरुवाई और महंती ही काम देंगी। महामण्डेश्वर और जगद्गुरु हो जाना भी काम न देगा। गृहस्थ-विरक्त दोनों के ऐश्वर्य काम नहीं देंगे।

काम देगी तो केवल चित्त की निर्मलता। जिसने अपने चित्त को खूब मांजा उसका चित्त निर्मल होता है। जिसका चित्त मंजा हुआ है, मन मंजा हुआ है उसकी वाणी मंजी हुई और निर्मल रहेगी। उसके कर्म भी निर्मल रहेंगे। इस प्रकार मन, वाणी और कर्म तीनों जिसके निर्मल हैं, वह सिंहासन पर बैठकर जाता है। लेकिन जिसका चित्त गंदा है तो वह जंजीर में बंधकर जाता है।

आज आप लोगों के सामने मैंने साहेब की एक साखी कही कि “आये हैं सो जायेंगे, राजा रंक फकीर। एक सिंहासन चढ़ि चला, एक बंधा जात जंजीर ॥” इस साखी पर पुनः-पुनः विचार करें, मनन-चिंतन करें और अपने मन को पवित्र करें। इसी के साथ आज के इस सत्र में मैं अपनी वाणी को विराम देता हूँ। □

## सद्गुरु कबीर के उपदेश

चेतावनी को अंग

कबीर गर्व न कीजिये, काल गहे कर केस।  
ना जाने कित मारि हैं, क्या घर क्या परदेस ॥

कबीर गर्व न कीजिये, ऊँचा देखि अवास।  
काल परों भुइँ लेटना, ऊपर जमसी घास ॥

कबीर गर्व न कीजिये, देही देखि सुरंग।  
बिछुरे पर मेला नहीं, ज्यों केंचली भुजंग ॥

कबीर नौबत आपनी, दिन दस लेहु बजाय।  
यह पुर पट्टन यह गली, बहुरि न देखहु आय ॥

कबीर सपने रैन के, ऊघरी आये नैन।  
जीव परा बहु लूट में, जागूँ लेन न देन ॥

कबीर यह संसार है, जैसा सेमल फूल।  
दिन दस के व्यवहार में, झूठे रंग न भूल ॥

कबीर यह तन जात है, सकै तो ठौर लगाव।  
कै सेवा करु साधु की, कै गुरु के गुन गाव ॥

कबीर बेड़ा जरजरा, कूड़ा खेवनहार।  
हरुये हरुये तरि गये, बूड़े जिन सिर भार ॥

कबीर रसरी पाँव में, कहँ सोवै सुख चैन।  
साँस नगारा कूँच का, बाजत है दिन रैन ॥

हाड़ जरै जस लाकड़ी, केस जरै ज्यों घास।  
सब जग जरता देखि करि, भये कबीर उदास ॥

पानी केरा बुदबुदा, इस मानुष की जात।  
देखत ही छिप जायेंगे, ज्यों तारा परभात ॥

कै खाना कै सोवना, और न कोई चीत।  
सतगुरु शब्द बिसारिया, आदि अन्त का मीत ॥

पाकी खेती देखि के, गरब किया किसान।  
अजहूँ झोला बहुत है, घर आवै तब जान ॥

दुनिया सेती दोसती, होत भजन में भंग।  
एकाएकी राम सो, कै साधुन के संग ॥

कुल खोये कुल ऊबरे, कुल राखे कुल जाय।  
राम निकुल कुल भेटिया, सब कुल गया बिलाय ॥